सिद्ध योग

संस्थापक :
योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज

योग सिद्धान्त एवं आध्यात्म का प्रतिपादक मासिक

वर्ष : 42; अंक : 3
जून, 2009

श्री सिद्धगुफा प्रकाशन
सवाँई-283202 (आगरा) उ.प्र.

अमृत कण

चित्रकर्म यथाऽनेकैरंगैरुन्मील्यते शनैः।
ब्राह्मण्यमपि तद्वत्स्यात्संस्कारैर्विधिपूर्वकैः।।

(महर्षि अंगिरा)

विधिपूर्वक सम्पन्न किए गए संस्कारों से संस्कृत व्यक्ति परम तत्त्व को या परमानन्द को प्राप्त करता है, जैसे कि अनेक रंगों से विधिपूर्वक सुसज्जित चित्र आह्लाद देने में समर्थ होता है।

● ● ●

सदा नादानुसन्धानात्संक्षीणा वासना तु या।
निरंजने विलीयते मनोवायु न संशयः।।

(नादबिन्दूपनिषद् 49–50)

अर्थात् शब्द के सतत् अभ्यास से वासना क्षीण हो जाती है और मन और प्राणवायु का निरंजन में निश्चित ही लय हो जाया करता है।

● ● ●

असतां दर्शनात् स्पर्शात् संजल्पाच्च सहासनात्।
धर्माचाराः प्रहीयन्ते सिद्धयन्ति च न मानवाः।।

(महा. वन 1/29)

अर्थात् दुष्ट तथा दुर्व्यसनी मनुष्यों के दर्शन से, स्पर्श से, उनके साथ वार्तालाप करने से धार्मिक आचार नष्ट हो जाते हैं। ऐसे कुसंगी मनुष्य कभी भी अपने किसी कार्य में सफल नहीं हो सकते।।

● ● ●

नाम संकीर्तनं यस्य सर्वपापप्रणाशनम्।
प्रणामो दुःखशमनस्तं नमामि हरिं परम्।।

(श्रीमद्भा. 12/13/23)

जिन भगवान् का नाम–संकीर्तन सभी पापों का नाश करने वाला है और प्रणाम दुःखनाशक है, उन परमेश्वर को मैं नमन करता हूँ।

● ● ●

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक-पत्र

ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्
मर्त्योमृत्योमुंख विवरत्तो, मुक्तिमाप्नोति सद्यः।
तत्प्राप्यर्थान् बहुतर विशदान् योगशास्त्रोपदेशान्
कल्याणानाम् भवतु महतां सिद्धये सिद्धयोगः।।

अर्थ :- शुद्ध (निर्विकार) स्वभाव वाले परम ब्रह्म का ध्यान करते-करते मृत्यु के मुख में पड़ा हुआ मनुष्य शीघ्र ही मुक्ति को प्राप्त हो जाता है। उस मुक्ति की प्राप्ति के उपाय स्वरूप योग ध्यान शास्त्र के सिद्धान्तों की विस्तृत व्याख्या करने वाली ''सिद्धयोग'' नामक पत्रिका सत्पुरुषों के परम कल्याण की सिद्धि (प्राप्ति) में सक्षम व सहायक हो।

वर्ष : 42 अंक : 3

श्री रामचन्द्रचरणौ मनसा स्मरामि।
श्री रामचन्द्रचरणौ वचसा गृणामि।।
श्री रामचन्द्रचरणौ शिरसा नमामि।
श्री रामचन्द्रचरणौ शरणं प्रपद्ये।।

मन से श्रीरामचन्द्र के चरणों का चिन्तन, वचन से श्री रामचरणों का गुणगान; सिर से श्री रामचरणों में नमन और अन्ततः उन्हीं चरणों की शरण लेता हूँ।

जून 2009

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र
सवाई (एत्मादपुर) आगरा

SIDDHYOG

HINDI MONTHLY
Propagating Yoga & Spiritual values

संस्थापक :
योग–योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

सम्पादक :
आचार्य (डा.) दासलाल ब्रह्मचारी

संयुक्त सम्पादक
डॉ. विजय सिंह

प्रबन्ध सम्पादक :
समस्त योग प्रचार मण्डलों के अध्यक्ष एवं गुरु भाई–बहिन

अनुक्रमणिका

1.	विशेष लेख – योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज	3
2.	सम्पादकीय	7
3.	मूक पुनि बोले –डॉ. रुद्रदत्त चतुर्वेदी	9
4.	प्राणों का प्राणों में हवन –डा. राजकुमार त्रिखा	11
5.	सद्गुरु कृपालीला –जगदीश राए बंसल	14
6.	गजल –भूपेन्द्र 'अंकुश'	17
7.	आह्लादिनी शक्ति श्री राधा तत्व –डॉ. जे.पी. शर्मा	18
8.	अमृत वचन –डा. विजय सिंह	26
9.	गुरुदेव की कृपायें –त्रिजुगी नरायन मिश्र	30
10.	मन का वैज्ञानिक रहस्य –बल्लभाचार्य शर्मा	31
11.	श्री मद्भगवद्गीता – एक सार्वभौम एवं सार्वकालिक सद्ग्रन्थ	36

एक प्रति	: रु. 11.00
वार्षिक शुल्क	: रु. 130.00
द्विवार्षिक	: रु. 250.00
आजीवन (10 वर्षीय केवल)	: रु. 850.00

विशेष लेख

ब्रह्मचर्य व्रत

योग–योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

भगवान जगदात्मा श्री कृष्ण ने गीता में 'युक्ताहार विहारस्य' इन शब्दों के साथ युक्ताहार विहार' पर भी विचार किया है। विहार शब्द का अर्थ है ऐश–आराम, रमण इसलिए योगाभ्यासी के लिए यह भी एक आवश्यकीय कर्तव्य है कि वह जगदात्मा के शब्दों का पालन करने के लिए और अपने ऊँचे अभ्युत्थान के लिए अपने आपको विहार में न डाले। युक्ताहार विहारस्य का अर्थ है ठीक समय पर खाना और संयम से रहना। हमारे शास्त्रों में स्थान–स्थान पर ब्रह्मचर्य का बहुत बड़ा वर्णन मिलता है, ब्रह्मचर्य शब्द का अर्थ है:–

ब्रह्माणि चरतुं शीलम,

स्यास्तीति ब्रह्मचारी।

अर्थात् ब्रह्म के अन्दर विचरने वाली जिसकी आदत पड़ गई है, वह ब्रह्मचारी कहलाता है और दूसरे–शास्त्रों में वीर्य को ब्रह्म माना है। भगवान शिव ने शिव संहिता में:–

अहं बिंदु रजः शक्तिः

आपने आपको बिन्दु स्वीकार किया है और रज को शक्ति माना है, इसके अतिरिक्त और भी स्थान–स्थान पर वीर्य को ब्रह्म रूप से वर्णन किया है। अतः जब तक ब्रह्म रूप वीर्य शरीर में व्यापक होकर नहीं रहेगा, तब तक मनुष्य योगाभ्यास का अधिकारी बनता ही नहीं। उसमें भी वह हठाभ्यास: से कोसों दूर रहता है। यदि कोई विलासी व्यक्ति अपने आपको हठयोगी बनाना चाहता है तो उसका वह प्रयास इसी प्रकार का प्रयास है जैसे कोई बालक हाथ से चन्द्रमा को पकड़ना चाहता है। अतः योगासन करने वाले व्यक्ति के लिए यदि वह आसनों के उच्चतम परिणाम को देखना चाहता है तो उसके लिए ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करना भी बहुत ही अनिवार्य है। ब्रह्मचर्य किसको कहते हैं इसके विषय में हमारे आचार्य लिखते हैं:–

कर्मणा मनसा वाचा सर्वावस्थासु सर्वदा।

सर्वत्र मैथुन त्यागो ब्रह्मचर्य प्रचक्षते॥

अर्थात् सब अवस्थाओं में मन वाणी और कर्म से सर्वथा मैथुन त्याग ही ब्रह्मचर्य है। मूत्राशय और मलाशय के ऊपर मणि पूरक में वीर्य का कोष रहता है। शरीर व्यापक वीर्य इधर–उधर की कामुक तरंगों से द्रवित होकर वहाँ इकट्ठा होने पर वह शरीर में पुनः व्यापक

नहीं हो पाता और कामोद्देकों से वह स्खलन की ओर ही जाता है। इस प्रकार के विचारों से वीर्य का कोष बार–बार खाली होता रहता है। अतः ब्रह्मचर्य व्रत धर्म करने वालों के लिए यह परमावश्यक है कि वह वीर्य को शरीर में व्यापक करने के लिए कोई न कोई व्यायामों को अवश्य करते रहें किंतु अन्य व्यायामों की अपेक्षा जैसा कि हम पहले लिख चुके हैं यौगिक व्यायाम ही परमोत्कृष्ट है जिसके करने से शरीर की हर नाड़ी ठीक प्रकार से रस रक्त के वहन करने वाली बनती है। योगासनों के करने से सभी स्नायु सबल हो जाते हैं, छोटी–छोटी शिरायें भी अपने कार्य को ठीक करती हैं यथोचित मात्रा में स्थान–स्थान पर रस रक्त को पहुंचाती हैं। अतः योगासनों के द्वारा बहुत जल्दी वीर्य शरीर में व्यापक हो जाता है। कुछ आसन तो इस प्रकार के हैं जिनसे वीर्य वीर्यकोष की ओर न जाकर ऊर्ध्व गमन करता है, ऐसे ब्रह्मचारी कुछ दिन में ही ऊर्ध्वरेतस बन जाते हैं। भगवान शिव ने शिव संहिता में स्पष्ट कह दिया है:–

सिद्धे बिन्दौ महयत्ने किन्न सिद्धयन्ति भूतले।
उर्ध्वरेता भवेद्यस्मात तावत् काल भयं कुतः।।

अर्थात् प्रयत्न करके जो लोग बिन्दु जय करते हैं वह संसार में सभी काम कर सकते हैं, जिन्होंने अपने आपको उर्ध्व रेतस बना लिया है, उनको कालभय उपस्थित नहीं होता। इसलिए योगासनों के अभ्यासी को ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करना भी उसका कर्तव्य है। बहुत जगह पर इस प्रकार की घटनायें देखने में आती हैं, जिन्होंने अनायास अपनी मृत्यु को बुला लिया। ब्रह्मचर्य रहित विलासी व्यक्ति यदि योगासन का अभ्यास करते हैं तो **'अकर्णात् कर्णम् श्रेयः'** के नियमानुसार कुछ न कुछ तो ठीक होगा ही किंतु उत्कृष्ट फल की प्राप्ति उसी हालत में हो सकती है कि वे सावधानी के साथ ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करें। ब्रह्मचारी के शरीर में व्यापक हुआ वीर्य उसकोअतुल बल देता है। योग दर्शन में भगवान पतंजलि देव ने स्पष्ट सीधे शब्दों में लिख दिया है:–

ब्रह्मचर्य प्रतिष्ठायां वीर्यलाभः।

और इसका अर्थ करते हुए व्यास जी महाराज ने और भी ऊँचे शब्दों में ब्रह्मचारी की इन शब्दों में प्रशंसा लिखी:–

यस्य लाभद प्रतिघान गुणानुत्कर्षयति।
सिद्धश्च विनेयेषु ज्ञानमा–धातुसमर्थो भवतीति।।

अर्थात् ब्रह्मचारी अलौकिक गुणों की धारणा करता है एवं सिद्ध हो जाने पर अपने शिष्यों में शक्तिपात करने की ताकत वाला हो जाता है। अतः जो लोग योग आसन करते हुए और पूर्णरूपेण ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करेंगे उनके शरीर में अलौकिक गुणों का प्रकाश होना स्वाभाविक है। ब्रह्मचर्य व्रत का यह अर्थ नहीं कि जंगलों में घूमने वाले साधु जटा–जूटधारी, जीवन भर शादी न करें तो वही ब्रह्मचारी कहलाने के अधिकारी हैं। यदि कोई जटा–जूटधारी व्यक्ति ब्रह्मचर्य के नियमों का पालन नहीं करता है तो गृहस्थियों से बदतर हो सकता है। और

जो गृहस्थी अपने गृहस्थ धर्म को निभाता हुआ ऋतुकालानुगामी है और केवल मात्र सन्तानोत्पत्ति के लिए वीर्यदान करता है वह अवश्य ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करता है, इसलिए यह नहीं समझना कि ब्रह्मचारी शब्द का प्रयोग घरबार त्यागी साधुओं के लिए ही किया गया है प्रत्युत गृहस्थी भी स्वदार निरत होकर सन्तानोत्पत्ति के लिए गृहस्थ उपभोग करते हुए अवश्य ब्रह्मचारी ही है और उस प्रकार के ब्रह्मचर्य व्रत का फल उनका शरीर उनको बतलाता ही रहेगा।

ब्रह्मचर्य में सहायक प्राणायाम

प्रथम विधि:– योगासन करने वाले साधक त्रिकोण आसन को भली प्रकार जानते हैं। पहले साधारण रूप से सीधे खड़े हो जायें फिर सहसा अपने प्राणों को नासिकारन्ध्रों से एक दम बाहर निकाल दें और निकाल देने पर नाभि के नीचे के भाग को जहाँ पर मल मूत्र विसर्जनी नाड़ियाँ रहती हैं उस भाग को अपने दाहिने हाथ से बायीं ओर से दाहिनी ओर मल करके प्राण को बाहर रोके हुए ही बायीं ओर को घुटना झुका कर त्रिकोण आसन की विधि से घुटना झुका कर त्रिकोण आसन कर ले और उसके बाद धीरे–धीरे प्राण को भीतर ले आयें किंतु भीतर से रोकने की आवश्यकता नहीं है, फिर प्राणों को समान गति से चलने दें इसी प्रकार से फिर दूसरी बार पूर्ण प्राण कोष को बाहर निकाल कर नाभि के भाग फिर दाहिने हाथ से ऊपर की ओर मलकर प्राण को बाहर रोके हुए दाहिनी ओर का घुटना झुका करके त्रिकोण आसन की विधि से आसन करें। जब तक प्राण बाहर रहे तब तक उस आसन को कायम रखें और ज्योंही घबराहट शुरू हो और प्राण भीतर जाने लगे तो आसन भी छोड़ दें। साथ–साथ यह धारणा करते रहें कि मैं अपने वीर्य को ऊपर की ओर आकर्षित कर रहा हूँ। ऐसा करने से मूत्राशय और मलाशय के ऊपर रहने वाला वीर्य कोष भी अवश्य ऊपर की ओर आकर्षित हो जायेगा और इस क्रिया को करने वाला व्यक्ति उर्ध्व रेतस हो जायेगा।

उर्ध्व रेतस प्राणायाम की दूसरी विधि

सिद्धासन से बैठ जाइये, सिद्धासन करने की विधि आगे आसनों में बताई जायेगी, वैसे साधारण रूप से अपने बायें पैर की एड़ी को गुदा द्वार के आगे लिंग नाल के नीचे दृढ़ता से जमा कर रखें और दूसरे पैर की एड़ी को लिंग नाल के ऊपर रखें, वो एड़ियाँ इस प्रकार रखी हुई हों जिनकी ग्रन्थी भाग (टाकनी) बिल्कुल समसूत्र रूप से मिले हुए से हों इस प्रकार जमायें। नीचे की एड़ी को थोड़ा दृढ़ करके रखें, जहाँ यह एड़ी रखी जाती है वहीं से वीर्य वाहिनी नाड़ी जाती है, इसके दबाव से वो नाड़ी दब जाती है और इस नाड़ी के दब जाने से मन के वासनिक आकर्षण कम हो जाते हैं। इस प्रकार अपने पैरों को जमाकर और दोनों हाथों को घुटनों पर जमा कर समकाय शिरोग्रवि की विधि के अनुसार शरीर को सम सूत्रता में रखकर सीधे बैठ जायें। ठोड़ी को थोड़ा झुकाकर छाती में लगायें पेट भीतर की ओर खिंचा हुआ हो इसको सिंहासन कहा है। इस आसन से बैठकर ऊपर बतलाई विधि के अनुसार अपने सारे शरीर के प्राण को एक दम बाहर निकाल दें और उड्डयान बन्ध लगा लें। उड्डयान बन्ध के साथ–साथ

मूल द्वार का आकर्षण भी ऊपर की ओर स्वाभाविक हो जायेगा। प्राणों को बाहर की ओर रोके रखें। जिस समय वह बाहर रुका हुआ हो और उड्डयान बंध लगाकर मूल द्वार का उर्ध्वाकर्षण किया हुआ हो उस समय अपने मन में धारणा करें कि मैं अपने वीर्य को ऊपर की ओर आकर्षित कर रहा हूँ फिर उसके बाद जब घबराहट हो तो प्राण को अन्दर ले आयें किंतु अन्दर रोके नहीं। इस प्रकार के तीन प्राणायाम रोज करने से वीर्य विकारों में बड़ा अनुपम लाभ होता है। और इसके साथ-साथ उपयुक्त खान-पान मिलता हो तो इन्हीं प्राणायामों को 20-21 तक भी बढ़ाया जा सकता है किंतु हर साधक को अधिक मात्रा में प्राणायाम नहीं करना चाहिए केवल मात्र वीर्य विकार वाले रोगियों को रोग निवृत्ति के लिए दो या तीन प्राणायाम कर लेने चाहिए ऐसा करने से उनको अवश्य अनुपम लाभ होगा।

■ *तुम्हारा यह मानव-जीवन पाप कमाने के लिए तो है ही नहीं, व्यर्थ खोने के लिए भी नहीं है। इसका एक-एक क्षण भगवान् की प्राप्ति का शुभ क्षण है, अतएव अमूल्य है और प्रत्येक क्षण को इसलिए भगवत्प्राप्ति के साधन में ही लगाना चाहिए। संसार के इन्द्रियभोग तो सभी योनियों में मिल सकते हैं, परंतु भगवत्प्राप्ति साधन तो इसी मानव-शरीर से सम्भव है। अतएव इसको केवल इसी काम में लगाओ।*

योग से ही आत्म शाँति और विश्व शाँति संभव है

आज के इस भौतिक युग में जितनी सुख सुविधायें बढ़ रही हैं उतना ही मनुष्य चारों ओर असन्तोष, निराशा छल और हिंसा के दलदल में डूबता जा रहा है। भौतिक सुविधाओं से मनुष्य की वृत्ति में बदलाव नहीं आ सकता। स्वभाव में बदलाव तो सद्‌विचार व मनन से ही आयेगा जिसे धर्म का नाम दिया गया है। वस्तुतः धर्म वह साधन है जिससे मनुष्य को इस जीवन में सुख, यश और उन्नति मिले और परलोक में शान्ति व मुक्ति की प्राप्ति हो।

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है उसे समाज में एक दूसरे से मिलकर रहना होगा। एक दूसरे की भावनाओं का आदर करना होगा। हमारे पूर्वजों व धर्माचार्यों, स्मृतिकारों ने कुछ मानवीय सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया जिन पर चलकर मनुष्य स्वयं सुखी रहकर दूसरों को सुखी बना सकता है। सृष्टि के आदि मानव मनु जी महाराज ने धर्म तत्व के दस लक्षण बताये हैं। मनु जी महाराज योगी थे और ये सूर्यनारायण (विवस्वान) के शिष्य थे। मनुजी ने मानव के सर्वतोमुखी कल्याण के लिए जिन सिद्धान्तों को समक्ष रखा है वे ही धृतिः क्षमा आदि–आदि हैं। जिनको जीवन में उतारने से मनुष्य एक आदर्श मानव, धार्मिक व्यक्ति एवं आध्यात्मिक व्यक्ति बन जाता है। यही धर्म के अंग मनुष्य को पशु से अलग करके मानव बनाते हैं। इसलिए व्यक्ति को सर्व प्रथम अपने जीवन में धर्माचरण लाना होगा। हम सुधरेंगे जग सुधरेगा। महायोगी पतंजलि जी महाराज ने योगी बनने के लिए सर्व प्रथम यम–नियम के रूप में धर्माचरण का ही प्रतिपादन किया है बिना इनके पालन किये कोई योगी महापुरुष नहीं बन सकता। जब मनुष्य धर्म का अतिक्रमण करता है वहीं से अशान्ति, असंतोष, अमर्यादा एवं हिंसा का प्रवेश हो जाता है। धर्माचरण के लिए मनुष्य को सद्‌विचार की आवश्यकता होती है। सुन्दर वृत्ति की आवश्यकता होती है। **लोभ भी पाप का कारण माना गया है** जो भी भोग्य पदार्थ हैं अपने परिश्रम से उनका अर्जन करके उपभोग करना चाहिए। दूसरे की वस्तु को देखकर लोभ करके उसे अन्याय से प्राप्त करने का प्रयास नहीं करना चाहिए। वेद भगवान की आज्ञा है 'तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद् धनम्' संसार के पदार्थों का त्याग भाव से उपभोग करो, दूसरे के धन की ओर गीध दृष्टि मत रखो।

'आचारहीनं न पुनन्ति वेदाः' आचरण हीन व्यक्ति को वेद भी पवित्र नहीं कर सकते। आज यहाँ भौतिक जगत में प्रदूषण फैल रहा है और मनुष्य इसको दूर करने का प्रयत्न कर रहा है। किंतु एक बहुत बड़ा प्रदूषण व्याप्त है वह है मानस प्रदूषण (Mental Pollution) विचारों व भावनाओं का प्रदूषण। यह प्रदूषण सूक्ष्म होने के कारण दिखाई नहीं देता है किंतु इनकी भी तरंगें चलती हैं जो मनुष्य के मन–बुद्धि पर प्रभाव डालती हैं। इस भयानक प्रदूषण को दूर करने के

लिए ही Meditation या ध्यान योग की आवश्यकता होती है। मानस प्रदूषण बहुत घातक वस्तु है। ये ही विभिन्न रोग–शोक के रूप में उभर कर आते हैं। महर्षि चरक हमारे प्राचीन इतिहास में बहुत बड़े आयुर्वेद के आचार्य (Physician) हुए हैं, रोगों की चिकित्सा के उपाय के रूप में वे अष्टाङ्ग योग की उपादेयता पर बल देते हैं जिसमें विशेष रूप से ध्यान योग व समाधि योग की आवश्यकता पर बल दिया है। योग के आधारभूत अंग यम नियमों को लेकर सनातन हिन्दू धर्म के अवान्तर धर्म बौद्ध धर्म एवं जैन धर्म का विकास हुआ है। जिन धर्मों में सत्य, अहिंसा को धर्म का प्राण बताया है। वस्तुतः इन्हीं यम–नियम के पालन के साथ ही आध्यात्म की नींव पड़ती है। यम–नियम के स्वरूप को समझ लेने के पश्चात् भी इन्हें व्यवहार में लाना होगा। व्यवहार में तभी आयेगा जब हमारा आहार–विहार शुद्ध और सात्विक होगा। 'यथा अन्नं तथा मनः' के नियमानुसार आहार से ही मन बनता है। इसलिए सतोगुणी आहार का प्रयोग अपरिहार्य है। इसके साथ–साथ सतोगुण को बढ़ाने के लिए मन को एकाग्र करना आवश्यक है। एकाग्र चित्त वाला साधक ही पूर्णरूपेण यम–नियम के पालन करने में सक्षम होता है। यही उपाय शान्ति प्राप्ति का है। स्वयं अशान्त रहकर दूसरे को शान्ति नहीं दे पायेंगे। अपने घर में आग लगी है दूसरे की आग क्या बुझायेंगे? आज '**धर्म निरपेक्षता**' की बात कही जाती है। यदि इसका शाब्दिक अर्थ निकालें तो होगा धर्म की अनावश्यकता। अर्थात् जो ऋषियों ने हमारे जीवन के मानदण्ड निर्धारित किये हैं उनका त्याग और एक उच्छृंखल जीवन जीना। अमर्यादित एवं उच्छृंखल जीवन जीने से सर्वत्र अशान्ति फैलेगी और एक अराजक और अनाचार युक्त समाज। किंतु यह तो ऋषियों के तथा भगवान् के उपदेशों एवं आदेशों का सरासर उल्लंघन है जिसका दुष्परिणाम व्यक्ति को भोगना होगा।

हमारे वेदों का उद्घोष है कि पृथ्वी के सारे मानव ऋषियों से शिक्षा ग्रहण कर तदनुसार आचरण करें तभी विश्व में शान्ति आयेगी। भारतीय संस्कृति की अवहेलना व उपेक्षा करके पाश्चात्य पद्धति में जीकर हम कभी सुखी नहीं बन सकेंगे। आवश्यकता है हर व्यक्ति अपने को सनातन संस्कृति एवं सभ्यता के साँचे में ढाले और जीवन को सुसंस्कृत, परिमार्जित एवं शुद्ध करता चला जाये। इसी प्रकार से जीने के विज्ञान और कला का नाम ही तो योग है। योग विज्ञान ही हमारे अधि दैविक, अधि भौतिक एवं आध्यात्मिक तापों का शमन करने में सक्षम है। मनुष्य को यदि ज्ञान, शान्ति, सुख और आनन्द को प्राप्त करना है तो योग रूपी दिव्य औषधि का सेवन करना ही होगा। तभी त्रयताप से छुटकारा मिलेगा। योग ही भक्ति के वास्तविक स्वरूप से परिचय कराता है। योग मार्ग पर चलने से ही विश्व में शान्ति आयेगी। योगियों ने ऋतम्भरा प्रज्ञा जैसी दिव्य वस्तु को पाकर आत्मज्ञान के अमूल्य निधि को पाया है और इसे विश्व को दिया है।

योग सृष्टि के आदि से प्रचलित दिव्य ज्ञान है इसी को मनुष्य अपने जीवन में उतारें तथा दूसरों को भी इस अमृतमय ज्ञान को बाँटें। तभी हम समाज में एवं विश्व में शान्ति की कल्पना कर सकते हैं।

मूक पुनि बोले...

डॉ. रुद्रदत्त चतुर्वेदी

याद नहीं कि वह कौन सी शुभ घड़ी थी जब श्री गुरुदेव योगिराज चन्द्र मोहन जी की चरण शरण आया था। उस दिन के बाद से निरंतर कृपायें होती रहीं, संख्या में अनगिनत। ''सांसों की सीमा निश्चित है, इच्छाओं का अंत नहीं है'' सो अपनी भी इच्छायें अनन्त रहीं परन्तु दाता भी ''एक राम, भिखारी सारी दुनियाँ'' वाले थे कि जो माँगोगे वही मिलेगा।

शादी हुई। पहली कन्या हुई। अब पुत्र की इच्छा थी। ज्योतिषियों ने (एक ने नहीं, अनेक ने) भविष्यवाणी की थी कि 4 पुत्रियों के बाद पुत्र होगा और वह भी चौथे वर्ष में मर जावेगा। सो दो दुःख ''अजात और मृत'' साल रहे थे। एक उत्सव पर देखा कि स्व. डा भैया किसी भक्त की सिफारिश कर रहे थे कि इनके 7 पुत्रियाँ हैं एक पुत्र चाहिए। देखा पूज्य गुरुदेव ने प्रसाद दिया। पूज्यपाद की शक्ति से परिचित थे सो पहुँच गये अकेले में। इच्छा निवेदित कर दी चरण कमलों में और गुलाब की पंखुड़ियाँ ले आये। अनेकों साधु, सन्यासी, मौलवी, फकीर देखे– इच्छा पूरी हो जाये तो उनकी कृपा, न पूरी हो तो तुम्हारी आस्था में कमी। परंतु इस दरबार में ये प्रश्न नहीं थे। किंतु, परन्तु की कोई गुंजायश नहीं। पुत्र मिला, लेकिन एक घटना बताये बिना बात पूरी नहीं होती।

पुत्र जन्म की खबर सुनकर माता जी ने बताया कि उन्होंने पत्नि के गर्भ के 6वें–7वें माह में गुरुदेव जी को पत्र लिखा था कि वे मेरे पुत्र चाहती हैं। उत्तर पढ़ने लायक था– ''——रुद्र के यहाँ आने वाला बच्चा निश्चित रूप से पुत्र ही है इसमें शंका मत करना'' अगली पंक्ति गुरुदेव जी की महानता को दर्शाती है जब वे लिखते हैं– ''——यह बालक तेरे पुण्य प्रताप से आ रहा है।''

प्रसन्नता में तीन वर्ष बीत गये। चौथे वर्ष से पूर्व एक समस्या पुत्र ने और पैदा की। महोदय अब तक बोल ही नहीं सके। केवल दो शब्द बोलते थे– 'दाई या दाई चाहिए'। अब घुमाते फिरो घर भर में, दिखाते फिरो वस्तुएँ और संकेत करके पूछो– ये चाहिए और उत्तर में सिर हिले ना। और अंत में रोना प्रारम्भ। इसी बीच गुरुदेव जी का मुरादाबाद का कार्यक्रम सिद्धयोग में पढ़ा। दर्शन करने श्री चरणों में पहुँचे। कष्ट बताया। गुरुदेव ने पुत्र को गोद में बैठाया और ओठों पर उँगली फिराकर उससे बातें करते रहे। दो तीन मिनट बाद निर्देश हुआ कि प्रतिदिन आरती में शामिल करके इसे आरती गाने को कहूँ। बच्चे के लिए सबसे सरल शब्द माँ, पापा, बाबा (अकारान्त शब्द) होते हैं सो जो बच्चा उतना भी नहीं बोल पाता था उसने शुरु किया बोलना उन कठिन शब्दों से जो पूज्य गुरुदेव की कृपा से अनभिज्ञ के लिए

आश्चर्यजनक होते और भाषा ज्ञान (अर्थात् बोलना) शुरू हुआ –''चडडाड बिन्दम गुड्देव नमामी, गुड्देव शडडम गुड्देव नमामी'' और यह अशुद्धि भी एक सप्ताह में दूर हो गई। ''मूक पुनि बोले'' सत्य चरितार्थ हुई।

मुरादाबाद में ही पुत्र की चौथे वर्ष में मृत्यु की भविष्य वाणी पर भी प्रार्थना कर ली गई। सच कहें तो शायद नौकरी में अधिकारी से प्रार्थनायें की गई, परंतु करूणा सागर मुझ पर तो इतने कृपावान थे कि मैं मूर्ख आदमी ''समस्या उनके संज्ञान में लाता भर था'' और समस्या का निदान तुरत फुरत। सो केवल भविष्यवाणी बता दी गई। श्रीमुख ने बताया कि भविष्यवाणी तो सही है सो स्नेहाभिभूत होकर चौकड़ी भूल गये और हम दोनों बोले कि –''फिर आप देख लें''। आश्चर्य होता है अपनी अक्ल पर कि सर्व समर्थ योगिराज, जिन्हें गुरुदेव मानते थे उनसे कैसे प्रार्थना की जाय यह सलीका स्नातकोत्तर कक्षायें 17–18 साल पढ़ाने के बाद भी नहीं आया था। परंतु भावना के पारखी भगवान ने संकट के दिन समाधान की दिशा सुझा दी।

जाड़े की उस रात अचानक प्रेरणा दी कि क्या करें यदि 5–10 मिनट प्रेरित कार्य न करते तो हम तो समझते कि पुत्र कष्ट मुक्त होकर सो गया और वह सदैव के लिए सो जाता। गुरुदेव जी को जब–जब सूचित किया जाता कि आपकी कृपा से, तो उत्तर मिलता–करुणा सागर श्री प्रभुजी की कृपा से।

मैं धन्य हूँ कि मुझे ''नर देह में नारायण'' मिले थे और उन्हीं का सहारा आज भी है।

परोक्षे कार्यहन्तारं प्रत्यक्षे प्रियवादिनम्।
वर्जयेत्तादृशं मित्रं विषकुंभु पयोमुखम्।।

–हितोपदेश – 73

पीठ पीछे काम को बिगाड़ने वाले और प्रत्यक्ष में मीठी बात बोलने वाले व्यक्ति को इस तरह से त्याग देना चाहिए जैसे विष से भरे हुए उस घड़े को त्याग दिया जाता है जिसमें केवल मुख पर ही दूध भरा हुआ होता है।

प्राणों का प्राणों में हवन

डॉ. राजकुमारी त्रिखा, दिल्ली

महाभारत में कहीं–कहीं पर प्राणों का प्राणों में हवन करने का विधान भी किया गया है। भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं–अन्य कुछ योगीजन प्राण तथा अपान दोनों की ही गति को रोककर प्राणों में हवन करते हैं अर्थात् श्वास–प्रश्वास को बन्द करके प्राण अपान आदि सभी प्राणों को अपने–अपने स्थानों में ही रोक देते हैं। इसीलिए इसे केवल कुम्भक कहा जाता है, जो पतंजलि के अनुसार चौथे प्रकार का प्राणायाम है।

इसी प्रसंग में कतिपय श्लोक पहले भी मन तथा इंद्रियों के संयमपूर्वक श्वास तथा प्रश्वास के नियन्त्रण का विधान करते हुए भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं– 'कुछ योगी सभी इन्द्रियों के कार्यों तथा सभी प्राणों के कार्यों को संयमित करके आत्मसंयम योग रूपी अग्नि में हवन करते हैं। महाभारत के प्राचीन टीकाकार नीलकण्ठ ने इस श्लोक की व्याख्या करते हुए लिखा है– कुछ विद्वान अपनी इन्द्रियों को सांसारिक विषयों से हटाकर शरीर के भीतर ही केन्द्रित करते हैं। इस संयम को ही भगवान् श्रीकृष्ण ने अग्नि कहा है, इस संयमाग्नि में इन्द्रियों के हवन का यही तात्पर्य है। यथा कानों द्वारा बाह्य जगत की ध्वनि न सुन कर शरीरस्थ अनाहत नाद, घण्टानाद आदि दस नादों को हंसोपनिषद् में उल्लिखित प्रक्रिया द्वारा सुनना। इसी प्रकार अन्य इन्द्रियों द्वारा भी बाह्य जगत के स्वविषयों को ग्रहण न करते हुए शरीरस्थ रूप, ज्योति, स्पर्श, स्वाद आदि ग्रहण करना ही इन्द्रियों का संयमाग्नि में हवन है। इन्द्रियों के संयम के साथ–साथ प्राण का संयम भी करना चाहिए, तभी देह, इन्द्रिय, मन तथा बुद्धि से परे आत्मा का ज्ञान होता है। जो साधक इन्द्रियों के विषयों यथा रूप ज्योति, नाद पर मन एकाग्र करके साधना करते हैं वे इंद्रिय योगी हैं। उन्होंने इन्द्रियों का प्रत्याहार तो किया परंतु इन्द्रियार्थों का नहीं, अतः उनका मन तथा प्राण नियन्त्रित नहीं होते। बुद्धियोगियों का इन्द्रिय, मन तथा प्राणों का भी उपसंहार हो जाता है। इसी प्रकार विषयों का इन्द्रियों में, इन्द्रियों का मन में तथा मन का बुद्धि में विलय होने के पश्चात् आत्मज्ञान होने पर बुद्धि भी आत्मा में लीन हो जाती है। इस प्रकार योग साधना करने वाले साधकों को साधना की उत्कृष्टतानुसार विविध गतियाँ प्राप्त होती हैं। वायवीं संहिता के अनुसार इन्द्रियचिन्तक योग साधक दस मन्वन्तरों तक अपनी स्थिति में लीन रहते हैं। पंचमहाभूतों के चिन्तक (पृथ्वी आदि की धारणा करने वाले) सौ मन्वन्तर पर्यन्त, अहंकार चिन्तक एक सहस्त्र मन्वन्तरपर्यन्त तथा अव्यक्त प्रकृति के चिन्तक दस हजार मन्वन्तर पर्यन्त अपनी स्थिति में लीन रहते हैं परंतु निर्गुण पुरुष तत्व को प्राप्त करने के पश्चात् काल संख्या नहीं रहती, मोक्ष हो जाता है।

गीता में इन्द्रियों का प्राणों में संयमपूर्वक पाँचों प्राण वायुओं का अपने-अपने स्थानों में अवरोध ही प्राणों में प्राणों का हवन कहा गया है। इसी प्रकार का प्राणायाम भूरिश्रवा ने रणभूमि में किया था। अर्जुन ने प्रत्यक्षत: भूरिश्रवा से युद्ध न करते हुए भी उसकी दाहिनी भुजा उस समय काट डाली, जब वह सात्यकि से युद्ध कर रहा था। बिना पूर्व आह्वान के इस प्रकार अर्जुन द्वारा भुजा काट डालने पर, इस अनीतिपूर्ण युद्ध से खिन्न होकर वह युद्ध भूमि में ही आमरण अनशन व्रत लेकर बैठ गया था। उसने ब्रह्मलोक में जाने की इच्छा से प्राणायाम के द्वारा प्राणों को प्राणों में ही होम दिया। भगवान शिव को भी प्राणापान का अवरोध करने वाले तथा प्राणभग्न इसी अर्थ में कहा है।

भगवान कृष्ण ने मृत्यु के समय प्राणायाम पूर्वक इन्द्रियों को रोककर मन को हृदय भृकुटिमध्य व मूर्धा में स्थापित करके प्राण त्यागने वाले को परमगति का अधिकारी बताया है। वे कहते हैं-

सब इन्द्रियों के द्वारों को रोककर, मन को हृदय देश में स्थिर करके उस निश्चल मन द्वारा प्राण को मस्तक में स्थापित करके जो ॐ का जप करता है तथा उसके अर्थ स्वरूप परब्रह्म का चिन्तन करता हुआ शरीर त्यागता है वह परमगति प्राप्त करता है। उसी प्रसंग में श्रीकृष्ण पुन: कहते हैं-जो भगवान को स्मरण करता है तथा मृत्युकाल में भी योगबल से भृकुटि के मध्य में प्राणों को भली प्रकार स्थापित करता है, वह दिव्य स्वरूप परम पुरुष को प्राप्त होता है।

शान्ति पर्व में मन्त्र जप करने वाले ब्राह्मण तथा महाराज इक्ष्वाकु की कथा में भी प्राणों को क्रमश: भृकुटि मध्य तथा मूर्धा में स्थापित करने का वर्णन किया गया है। एक बार मन्त्र जापक ब्राह्मण तथा महाराज इक्ष्वाकु दोनों ने निश्चय किया कि ब्राह्मण के मन्त्र जप का फल, इक्ष्वाकु राजा तथा उसमें आधा-आधा बँट जाये। उसके फलस्वरूप इन दोनों ही महानुभावों को ऊर्ध्वगति प्राप्त हुई। इसी प्रसंग में भीष्मपितामह ने कहा- उन दोनों ने एक ही साथ अपने मन को विषयों से हटा लिया। तत्पश्चात् पंचप्राणों को हृदय में स्थापित किया फिर मन को प्राण तथा अपान के साथ मिला दिया। भौंहों के नीचे नासिका के अग्रभाग पर दृष्टि रखते हुए मन सहित प्राण अपान को दोनों भौंहों के बीच स्थिर किया। इस प्रकार मन को जीतकर दृष्टि को एकाग्र करके उन दोनों ने प्राणसहित मन को मूर्धा में स्थापित कर दिया। तत्पश्चात् वे दोनों समाधिस्थ हो गये। तभी महात्मा ब्राह्मण के तालुदेश का भेदन करके एक ज्योतिर्मयी विशाल ज्वाला निकली। इस कथा से स्पष्ट होता है कि प्राणों को सर्वप्रथम भ्रूमध्य में धारणा करने के पश्चात् ही मूर्धा में स्थापित करना चाहिए।

भीष्म पितामह की मृत्यु का प्रसंग अतिरोचक तथा प्राणायाम की इस प्रक्रिया पर पर्याप्त प्रकाश डालता है। मृत्यु के समय भीष्मपितामह मन सहित प्राण वायुओं को भिन्न-भिन्न धारणाओं में स्थापित करने लगे। इस प्रकार यौगिक क्रियाओं द्वारा रोके गये प्राण क्रमश:

ऊपर चढ़ने लगे। जिस-जिस अंग को त्यागकर उनके प्राण ऊपर उठते थे उसी अंग के बाण स्वतः ही निकल जाते थे तथा घाव भर जाते थे। इस प्रकार प्राण शक्ति न होने के पश्चात् भीष्मपितामह का शरीर बाणरहित हो गया। उन्होंने देह के सभी द्वारों को बन्द करके प्राणों को सब ओर से रोक लिया था। अतः वह उनका मस्तक फोड़कर आकाश में चला गया। उनके ब्रह्मरन्ध्र से निकलकर प्राण बड़ी भारी उल्का की भाँति आकाश में उड़ा व अन्तर्ध्यान हो गया।

मानव ! सावधान

मानव! तू भले सारी पृथ्वी पर विजय प्राप्त कर ले, भले ही अन्तरिक्ष का अतिक्रम कर सुदूर चन्द्र-मंगलादि तक पहुँच जा और अपने विज्ञान की विजयपताका फहरा दे। पर इससे न तो तू सुखी होगा, न तुझे शान्ति मिलेगी, न तेरा कल्याण होगा और न तू मृत्यु का ग्रास बनने से बच ही सकेगा। तेरी सच्ची विजय है, अपने मन को सर्वथा वश में करने में- मन को सर्वथा आत्मनिष्ठ कर या भगवान् में लगाकर आत्मसाक्षात्कार या भगवद्दर्शन करने में। इसी में तेरे जीवन की सफलता है, तेरा परम कल्याण है और तू सदा के लिए मृत्यु के पाश से बच सकता है। अन्यथा अवनि, अन्तरिक्ष और अगम्य लोकों पर विजय प्राप्त करने वाले अतीतकाल के अतिपराक्रमी असुरों की भाँति तू अपने अहंकार को बढ़ाकर उसी की पूजा में उन्मत्त बना इन्द्रियों का दासत्व करता हुआ अपना अमूल्य जीवन खो देगा। सावधान!

प्रमाद छोड़कर भगवान् को भजो

नित्य नयी आसक्ति, कामना, ममता नित नव-पाप।
नित्य अशान्ति, नित्य ही चिन्ता, नित्य शोक-संताप।।
बीत रहा अनर्थमय जीवन यों सारा बेकाम।
चेत करो, छोड़ो प्रमाद सब, भजो निरन्तर राम।।

सद्‌गुरु कृपालीला

जगदीश राए बंसल 'अधम', नई दिल्ली

योग प्रशिक्षण केन्द श्री सिद्ध गुफा सवाई धाम से सबन्धित हमारे एक पचास वर्षीय गुरु भाई का नाम श्री जयकुमार शर्मा है। यह आदरणीय भाई जी अपनी भार्या सहित भरपूर परिवार के साथ हरियाणा के कस्बा जाखौली जि. कैथल के निवासी हैं। आध्यात्मिक प्रेम से ओत-प्रोत यह परिवार लम्बे समय से गुरु देव भगवान श्री चन्द्रमोहन जी महाराज की छत्र-छाया में सुखमय जीवन-यापन कर रहा है। आदरणीय भाई जी मुख्य रूप से कपड़े के व्यापार में कार्यरत हैं।

यह कृपा प्रसंग सन् 2005 का है। आदरणीय भाई जी को उदर पीड़ा सताने लगी। स्थानीय चिकित्सा से कोई लाभ नहीं मिलने पर कैथल सम्पर्क किया गया। कैथल के विख्यात डा. डी.पी. गुप्ता एवं डा. मित्तल ने आवश्यक निरीक्षण करने के पश्चात् बतलाया कि आपकी पित्त की थैली में पथरी है। इसका ऑपरेशन ही एक मात्र उपचार है और यह ऑपरेशन भी बिना विलम्ब किए आज-कल में ही करा लेना उचित है। अन्यथा इस स्थिति में यह रोग किसी भी समय गम्भीर रूप ले सकता है। डाक्टरों का यह परामर्श सुन कर रोगी का मन उदास होना तो स्वाभाविक सी बात है। मगर भाई श्री शर्मा जी ने मन ही मन सोचा कि कुराना में अपने आराध्यादेव जी का वार्षिक सत्संग है। अगर अभी ऑपरेशन कराया तो योग शिविर में जाने से वंचित रह जाऊंगा। अतः कुराना उत्सव के पश्चात् ही ऑपरेशन कराने के विषय में निर्णय लिया जाएगा। आपको याद दिला दें कि कुराना गाँव अपने भाग्य विधाता पूज्यपाद श्री गुरुदेव जी महाराज की जन्म भूमि अलुपुर के निकट लगता गाँव है। इस गाँव में गुरुदेव जी महाराज महीनों का कार्यक्रम रखते थे। कुराना निवासी आदरणीय गुरु भाई बहिन इस कार्यक्रम की परम्परा को प्रणाधार गुरु देव जी महाराज के लाडले बच्चे परम पूज्य आचार्य ब्रह्मचारी श्री दास लाल जी महाराज की अध्यक्षता में आज भी निभाए हुए हैं। कुराना श्री शिव मन्दिर में बने श्री प्रभुजी के कमरे में विराजमान योग योगेश्वर आनन्दकन्द महाप्रभु जी श्री रामलाल जी महाराज एवं आराध्यदेव गुरु श्री चन्द्रमोहन जी महाराज के स्वरूपों की नित्य दोनों समय आरती पूजा की जाती है।

कुराना गाँव में योग प्रचार के समय अखिलात्मा त्रिजगत पावन बांके बिहारी जी के वृन्दावन जैसी योग वर्षा होती है। कई बार प्रसंग वश सिद्धेश्वर जी अपने प्रवचनों में बतलाया करते थे कि कुराना संकीर्तन का दिव्य प्रभाव केवल मनुष्यों में ही नहीं अपितु पशुओं में भी देखने को मिलता था। शाम के समय जब जोर-जोर से आरती होती थी तो "प्रभोपाहि आपन्न

मामि–शम्भो' की ध्वनि बहुत देर तक बोली जाती थी। तो उस ध्वनि में मनुष्यों के साथ–साथ पशु भी ध्यानस्थ हो जाते। गाँव का एक किसान शाम के समय अपने कोल्हू चिराने के लिए बैल को जोड़ता था तो 'नमामि शम्भो' के उच्चारण के समय बैल भी रुक कर स्थिरता से खड़ा हो जाता। जब तक ध्वनि उसके कान में पड़ती रहती थी, वह अपने स्थान से बिल्कुल हिलता भी नहीं था। किसान बहुत परेशानी में पड़ गया। गुरुदेव के पास आकर कहने लगा–आप यह 'नमामि शम्भो' कहना छोड़ दें, मेरा इससे नुकसान हो रहा है। मेरा बैल खड़ा हो जाता है और स्तब्ध सा रहता है। कहने का तात्पर्य यह है कि उस दिव्य ध्वनि के प्रभाव से पशु भी अछूता नहीं रहता था।

काल चक्र, युग चक्र और जग चक्र को एक साथ चलाने वाले प्राणी मात्र के भाग्य विधाता करुणा सागर श्री गुरु देव जी महाराज किस तरह, किस समय और किसका भाग्य उदय कर दें, यह समझना तो हमारे बूते से बाहर की बात है। मगर सर्व समर्थ जी महाराज तो अपने बच्चों पर कृपा करते ही रहते हैं।

इसी तरह का कृपा प्रसंग आदरणीय भाई श्री शर्मा जी ने नौ अक्टूबर 2008 को, पल–पल स्मरणीय, पतित पावन गुरु देव भगवान की जन्म स्थली अलुपुर में जन्मोत्सव के शुभ अवसर पर बड़े उत्साह से बताया कि मैं अपने संकल्प के अनुसार निर्धारित तिथि 23 जून 2005 को गाँव कुराना में पहुँच गया।

प्रवचन, भजन और भाई बहिनों के प्यार से प्रभावित हो कर मैं स्वयं भी उसी वातावरण में खो गया। फिर सुअवसर जान कर करुणेश्वर जी महाराज के श्री चरणों में स्वयं को समर्पित कर पूज्यपाद ब्र. श्री दासलाल जी महाराज के कर कमलों द्वारा अपने रोग निवारणार्थ प्रसाद ग्रहण किया। सन्त शिरोमणि तुलसीदास जी लिखते हैं कि:–

एक भरोसो, एक बल, एक आस–विश्वास।
एक राम घनश्याम हित, चातक तुलसीदास।।

घर पहुँच कर जैसे–जैसे मैंने प्रसाद सेवन किया, वैसे–वैसे मुझे आराम मिलता गया, और वह दिन भी आ गए जब मैं पूर्णतया रोग मुक्त दिखने लगा।

भभूति मेरे गुरु की कमाल करती।
जिसने भी खाई उसको निहाल करती।।

तत्पश्चात् घर वालों एवं मित्रों के दबाव से सन्तुष्टी के लिए मैं पुनः उन्हीं डाक्टरों के पास कैथल गया। मेरी प्रार्थना पर डा. डी.पी. गुप्ता एवं डा. मित्तल साहिब ने गहन निरीक्षण के पश्चात् मुझे पथरी से मुक्त करार कर दिया। हमारे किसी परम भक्त आदरणीय गुरु भाई ने लिखा है कि:–

गुरु देव के प्यारे बच्चों को,

पग–पग पे सहारा मिलता है।
तुम इधर हटो, तुम उधर बढ़ो,
यह आप इशारा, मिलता है।।

इस समय आदरणीय गुरुभाई श्री जय कुमार शर्मा अपने समस्त परिवार सहित योग योगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी के चरणों का दास बन बिना दवा–बूटि के सुखमय जीवन बिता रहा है।हमारे एक परम श्रद्धेय गुरु भाई ने कहा है कि :–

मेरे दाता के दरबार में, सब दुःख दर्द मिटाए जाते हैं।
दुनियाँ के सताए लोग यहाँ, सीने से लगाए जाते हैं।।

बंकिम बाबू की पितृभक्ति

बँगला भाषा के जाने–माने लेखक तथा 'आनंदमठ' उपन्यास के रचयिता बंकिमचंद्र चटर्जी बचपन से ही भारतीय संस्कृति तथा परंपराओं के प्रति श्रद्धाभाव रखते थे। माता–पिता के प्रति उनके हृदय में सदैव सम्मान का भाव रहता था। सोकर उठते ही उनके चरणस्पर्श करके आशीर्वाद ग्रहण करते थे।

उन्होंने प्रथम श्रेणी में बी.ए. की परीक्षा पास की। उनकी अनूठी प्रतिभा से प्रभावित होकर बंगाल के अंग्रेज उच्चाधिकारी मि. हालिडेन ने उन्हें अपने बँगले में बुलाया। उनकी प्रतिभा की प्रशंसा करते हुए कहा– 'मैं तुम्हें डिप्टी कलक्टर मनोनीत करना चाहता हूँ। अपनी स्वीकृति लिखकर तत्काल दे दो।'

बंकिमचंद्र ने धन्यवाद ज्ञापित करते हुए कहा– 'सर, मैं अपने पिता की स्वीकृति लेने के बाद ही अपनी स्वीकृति लिखकर दे सकता हूँ।'

अंग्रेज लाटसाहब ने आश्चर्य से पूछा– 'इतना बड़ा पद तुम्हें मिल रहा है। इसमें पिता की सहमति की क्या आवश्यकता है?'

बंकिम ने उत्तर दिया–सर, हम भारतीय माता–पिता की आज्ञा को सर्वोपरि धर्म मानते हैं। यह ठीक है कि पिता जी आपके इस प्रस्ताव से बेहद खुश होंगे, किंतु किसी भी पद को पाने से पूर्व उनका आशीर्वाद आवश्यक है।

वे पिता जी के पास पहुँचे। उनका आशीर्वाद प्राप्त करने के बाद उन्होंने डिप्टी कलक्टर पद के मनोनयन के पत्र पर अपनी स्वीकृति प्रदान की। मि. हालिडेन भारतीय युवक की पितृभक्ति देखकर हतप्रभ थे।

गजल

भूपेन्द्र 'अंकुश' जलेसर

दोहा– सन्त चरण, सद्गुरुचरण, सत्संगी के पाँव।
जिनके चारों ओर है सुखद घनेरी छाँव।।

मेरी भी सुन लिया करो मिन्नत कभी-कभी।
मिन्नत पै कर दिया करो दसखत कभी-कभी।।
औरों पै करते आ रहे सदियों से हर महर।
मेरी तरफ भी मोड़ दो जन्नत कभी-कभी।। 1।।
नजदीक मेरे सैकड़ों फिर भी नहीं सुकून।
चुभती है उनके तीरों की वहशत कभी कभी।। 2।।
तुम ढाल बनके सामने रहना मेरे सदा।
आयें जो जिन्दगी में दिक्कत कभी कभी।। 3।।
करता रहा हूँ आपसे इजहार प्यार का
दरसा दें आप भी तो मुहब्बत कभी कभी।। 4।।

आह्लादिनी शक्ति श्री राधा तत्व

डा. जे.पी. शर्मा, पौंटा साहिब (हिमाचल प्रदेश)

राधा प्रकृति स्वरूपाशक्ति है। जगतजननी राधा को भगवान श्रीकृष्ण की आह्लादिनी शक्ति माना गया है। पदमपुराण के अनुसार राधा कृष्ण की आत्मा है। रस की अंत: स्त्रोत है तथा रस की अतुल महानिधि भी है। श्री हरिवंश महाप्रभु ने अपने संप्रदाय का नाम श्री राधावल्लभ सम्प्रदाय रखा है, उन्होंने श्री राधा को कृष्ण से अधिक मान्यता दी है। कहते हैं श्री ब्रह्मा जी के वरदान स्वरूप राजा सुचन्द तथा रानी कलावती ने पुनर्जन्म लेकर राजा वृषभानु तथा रानी कीर्तिदा बने, जिन्होंने मथुरा जनपद के पास बरसाना गाँव में राज्य स्थापित किया। काफी समय व्यतीत हो जाने पर राजा के यहाँ सन्तान न होने से दोनों राजा श्री वृषभानु तथा जीवन सहचरी रानी कीर्ति ने यमुना माँ की तपस्या की। तपस्या के फलस्वरूप श्री राधा का जन्म अपने ननिहाल स्थान रावल (महावन) गोकुल के पास हुआ। श्री राधा जी का प्राकट्य भादों की शुक्ला अष्टमी दिन के ठीक बारह बजे हुआ। अपनी माँ के गर्भ से प्रकट होकर श्री राधा रानी ने अपने पिता श्री वृषभानु जी को धन्य कर दिया साथ ही रावल गाँव को भी महामण्डित कर दिया। सब जगह मंगलगान बधावे बजने लगे–

बज रही गाँव रावल में आज मंगल बधाई है।
कीर्तिदा रानी के घर सुघर राधा कुंवरि जाई है।।

परंतु रावल वासियों की प्रसन्नता अधिक दिनों तक नहीं रही, क्योंकि थोड़े दिनों के पश्चात् ही उनके पिता श्री राधा लाडली को ननिहाल से अपने भवन बरसाना ले आये। बस फिर क्या था, पलभर में यह शुभ समाचार पूरे ब्रज मण्डल में आग की तरह फैल गया तथा सर्वत्र खुशियाँ तथा मंगल गीत गाये जाने लगे–

देव देवियाँ आ गयीं नभ में बैठि विमान।
बरसाये सुरभित सुमन आनन्द–मग्न महान।।

यहाँ बरसाना की लड़कियाँ, गोपियाँ तथा ग्वाले सभी, समूह बनाकर राजभवन पहुँच गये तथा हर्ष स्वरों से बधाइयाँ देने लगे। गोपी, ग्वाले–मनसुखा, बलराम, धनसुखा, मधुमंगल तथा श्री दामा भी आये। यहाँ तक कि ऋषि, मुनि, सन्यासी तथा सभी तपस्वी भी बधाई देने पहुँचे। यथा–

मंगल बधाइयाँ हो, बंट रही भान के दरबार।
राधिका प्रेम–मूरति हो, छबीली ने लीनो अवतार।।

श्री वृषभानु जी ने अपने राजभंडार के द्वार खोल दिये–

मोद भरकर हृदय में हो, भानु ने खोल दिये भंडार।
रत्न, धन, धाम, कंचल हो, लुटाये हाथों खुले उदार।।

श्री गोकुल में जब यह शुभ समाचार श्री नन्दबाबा को मिला, तो तुरन्त ही यशोदाजी को लाली जी के विषय में बताया। यशो-, यह सुनकर आत्म विभोर हो उठीं। उन्होंने तुरन्त ही स्वर्ण के थालों में रत्नजटित आभूषण भर कर बरसाने कीर्तिभवन पहुँच गयी। बरसाने में नन्द बाबा तथा यशोदा जी का खूब सम्मान हुआ। नन्दरानी यशोदा अपनी सखी कीर्तिरानी से मिलने उनके कक्ष में गयीं तथा तरह-तरह से बधाइयाँ देने लगीं-

देख कर जसुमति रानी हो, कीर्तिदा मन अति मोद भराय।
उठा निज कर लाली को हो, दई जसुमति को गोद सुलाय।।
निरख मुख चन्द प्रभामय हो, यशोदा आनन्द रस फूली।
रह गयी अपलक निरखत हो, देह की सुधि सहसा भूली।।
हुआ जब चेत, लजाई। जय जय कुँवरि तब हिये लगाई।।

उसी समय श्री नारद मुनि श्री राधा रानी जी के दर्शनार्थ पहुँच गये:-

आये मुनि भानु-भौन नारद बरसाने।
गावत हरिनाम मधुर पावन रस-साने।।

मुनि ने परिचय देते हुए कहा-मैं हरिपुर से श्रीराधारानी के दर्शन के लिए आया हूँ। मेरा नाम नारद है। इतना सुनकर राजा श्री वृषभानु जी उन्हें अन्दर ले गये तथा अपनी लाड़ली के उन्हें दर्शन कराये। राधा रानी के दिव्य दर्शनों से नारद मुनि आत्मविभोर हो उठे-

भाँति भाँति करत स्तवन, फेरी तब दीनी।
चरन-रेनु कुँवरी की सिर चढ़ाय लीनी।।

राधाजी के दर्शन पाकर नारद जी ने कहा- दर्शन पाकर मैं धन्य हो गया। श्री नारद ही धन्य नहीं हुए, अपितु श्री राधा रानी के प्राकट्य से सारी सृष्टि ही धन्य हो उठी-

धन्य सूर्य-शशि, धन्य पुण्य वे अनल, अनिल, शुचि जल, आकाश।
देखा भाग्यवान जिन सबने राधा का प्राकट्य-विकास।।
धन्य मनुष्य, धन्य पशु पक्षी, तिर्यक सारे, कीट-पतंग।
देखा श्याम-सुखद राधा का कभी जिन्होंने कोई अंग।।
धन्य आज हम, जो कर पाये, श्याम-स्वामिनी के गुणगान।
धन्य सुन रहे, मिला रहे जो, इन गीतों में अपनी तान।।

(कल्याण, 81/9)

राधा-कृष्ण पृथक नहीं हैं, राधा ही श्री कृष्ण हैं तथा श्री कृष्ण ही श्री राधा हैं। भगवान

की शक्ति ही राधा हैं। कहा जाता है– राधा की शक्ति के बिना कृष्ण की शक्ति आधी हो जाती है– 'राधा बिन कृष्ण आधा'। कंस के अत्याचारों से तंग आकर सन्तों तथा देवों ने प्रार्थना की, हे, हरि! हमारी रक्षा करें, तब श्री हरि ने द्वापर के अन्त में कृष्ण अवतार धारण किया। संयोग देखिये भगवान कृष्ण ने भादों कृष्ण पक्ष अष्टमी में ठीक रात के बारह बजे जन्म लिया, इसी कारण उनका रंग साँवला हुआ तथा श्री राधा ने भादों शुक्ला अष्टमी ठीक दिन के बारह बजे जन्म लिया, 'उनका रंग गोरा हुआ। दोनों ही पूर्णावतार थे। जितने समय भूमण्डल पर रहे, बैकुंठधाम रिक्त रहा बताते हैं तथा बैकुंठ लोक की पूर्ण शक्तियाँ श्री कृष्ण के पास रहीं।

गौ लोक में जब श्री हरि ने भूमण्डल ब्रज प्रदेश में अवतरित होने की इच्छा प्रकट की थी, तब श्री राधा जी ने कहा था– नाथ मैं आपका वियोग कैसे सहन करूंगी। इसी कारण राधा जी को भी अवतरित होना पड़ा तथा उन्हीं की इच्छा के अनुरूप भूमि पर वृन्दावन, यमुना नदी तथा गोवर्धन पर्वत की रचना हुई। यथा–

यत्र वृन्दावनं नास्ति न यत्र यमुना नदी।
यत्र गोवर्धनो नास्ति तत्र मे न मनः सुखम्।।

अतः राधा श्री कृष्ण भगवान की प्रेरणा व प्राणाधार भूताशक्ति हैं। भगवान मुरली बजाते हुए श्री राधा जी का ही गुणगान करते रहते हैं। राधा श्री शुकदेव जी की इष्ट हैं। राधा का नाम लेते ही उनकी दिव्य समाधि लग जाती थी। यही कारण रहा कि श्री शुकदेव जी ने राजा परीक्षित को भागवत रस का दान किया। कृष्ण स्वयं भी हर पल श्री राधा जी का ही चिन्तन करते हैं–

स्मर वेग आये स्वरुप तब सुधि न कछू तन की बिहारी।
रसना रटन तुम नाम 'राधे राधे' गोविन्द प्रभु प्रिय ध्यान सो भरत अँकवारी।।

प्रमाणों के अनुसार श्री राधा जी का अवतरन रावल सरोवर (महावन) कमल पुष्प में हुआ था। यह प्राकट्य आज से लगभग 5231 वर्ष पूर्व हुआ था। कंस के अत्याचारों के कारण ही वृषभानु, रावल से बरसाना चले आये थे। राधा–राधा का नाम स्मरण करने से लोगों के अधूरे कार्य सफल हो जाते हैं–

राधा नाम लेई जो कोई, सहजहि दामोदर वश होई।

राधा के नाम का उच्चारण करने से ही भगवान श्रीकृष्ण भक्त के वश में हो जाते हैं। राधा पूर्णशक्ति हैं, जो भी मन से इनका नाम जपता है, वह भव सागर से तर जाता है–

राधा राधा रटत ही सब ब्याधा कटि जाय।
कोटि जनम का आपदा, पल भर में छुट जाय।।

देवी के विभिन्न रूपों में श्री राधा की पूर्णता स्वयं सिद्ध होती है–

गणेश जननी दुर्गा राधा लक्ष्मीः सरस्वती।
सावित्री च सृष्टि विधौ प्रकृतिः पञ्चधा स्मृता।।

अर्थात् दुर्गा, राधा, लक्ष्मी, सरस्वती तथा सावित्री ही प्रकृति स्वरूपा प्रधान है। इनमें से राधा मूल प्रकृति है–

परमाह्लादरूपा च सन्तोषहर्षरूपिणी।
निर्गुणा च निराकारा निर्लिप्तात्मस्वरूपिणी।।

अर्थात् वे परम आह्लादरूपा हैं, सन्तोष एवं हर्ष रूपिणी हैं। वे निर्गुण, निराकार, निर्लिप्त एवं आत्मस्वरूपिणी हैं।

श्री राधा जी की सखी भाव से पूजा की जाती है। राधा जी की आठ प्रमुख सखियाँ जैसे– ललिता, विशाखा, चित्र लेखा, तुंगविद्या, रंग देवी, इन्दुलेखा, चंपलता तथा सुदेवी प्रसिद्ध हैं। अष्ट सखियों के नाम अष्ट पहाड़ियाँ इनके नामों से प्रसिद्ध हैं। ललिता सखी–ऊँचा गाँव सखी गिरि पर्वत, विशाखा–पियासागाँव, चित्रलेखा–चिकसौली गाँव (ब्रह्माचल पर्वत), तुंग विद्या–कमई गाँव, रंग देवी–डवारा गाँव (रत्नागिरि), इन्दुलेखा–सुनहरागाँव, चंपलता–करहला गाँव (अष्टकूट पर्वत) तथा सुदेवी–गहरवन के नाम से पुकारी जाती हैं। श्री राधा जी की ये सखियाँ बातों ही बातों में राधा जी से मीठे व्यंग कसा करती थीं–

राधा तू बड़ भागिनी कौन तपस्या कीन।
तीन लोक तारन तरन सो तेरे आधीन।।

श्री राधा की सखियों को गोपी तथा कृष्ण के सखाओं को गोप कहके पुकारा गया है। इसका भाव है। गो– अर्थात् इन्द्रियाँ तथा पी (प) अर्थात् पान करना। अत: जो अपनी समस्त इन्द्रियों द्वारा केवल भक्ति रस का ही पान करे वही गोपी अथवा गोप है। प्रेम की भाषा ही अनिर्वचनीय गोपी या गोप भाव है। सबका प्रेम वंशी है। अत: राधा ही कृष्ण तथा कृष्ण ही राधा है। दोनों का प्रेम शाश्वत–सत्य है। जिसे हम प्रेम योग कहते हैं। प्रेम योग में इन्द्रिय सुख नहीं हुआ करता। दोनों का प्रेम मुरली है, जिसे हम मुरली योग कह सकते हैं। सूरदास के शब्दों में–

राधा प्रान गोवर्धनधारी, हरिहिं प्रान धन राधा प्यारी, सूर श्याम प्रिय प्रीति परस्पर,
जोरी जुगल बनी बनवारी।।

अत: 'स्त्रीत्व' तथा 'पुरुषत्व' की विस्मृति से ही 'गोपी या गोप' भाव जागता है। जिनमें ये दोनों जागृत रहते हैं, वह तो केवल इन्द्रियों का गुलाम ही रहता है। यही कारण था कि प्रभु माखन चोरी करते परन्तु फिर भी गोपियाँ उनके प्रेम से अघाती नहीं थीं।

राधा मृगमदगंध हैं, कृष्ण मृगमद हैं, राधा दाहिक शक्ति हैं, कृष्ण साक्षात् अग्नि हैं, राधा प्रकाश हैं, कृष्ण तेज हैं, राधा व्याप्ति हैं, कृष्ण आकाश हैं, राधा ज्योत्स्ना हैं, कृष्ण पूर्णचन्द्र हैं, राधा किरण है–कृष्ण साक्षात् सूर्य हैं, राधा तरंग हैं–तो कृष्ण सागर हैं। अत: दोनों

नित्य स्वरूप तथा एक दूसरे के पूरक एक आत्मा हैं। श्री कृष्ण के हृदय सरोज में राधा हैं तथा राधा के हृदय में कृष्ण भगवान के चरण कमल विराजमान हैं। एक बार सूर्य ग्रहण के समय वृन्दावन वासी– बाबानन्द, यशोदा, गोपियाँ सभी कुरुक्षेत्र पहुँचे। इधर श्री द्वारिकाधाम से श्री कृष्ण अपनी आठों महारानियों तथा अन्य परिवारजनों सहित वहाँ पहुँच गये। श्री रूक्मिणी को कृष्ण प्रिया श्री राधिका जी के दर्शनों की सदा लालसा बनी रहा करती थी। अब उनकी लालसा पूरी हो रही थी। सभी रानियाँ, श्री राधा जी से मिलने के बाद तुरन्त उन्हें अपने महलों में ले गयीं। सभी ने खूब आदर सम्मान किया, किसी भी प्रकार की कोई कमी आदरभाव में नहीं रहने दी। एक दिन विश्राम करते समय श्री रूक्मिणी जी श्रीकृष्ण महाराज के चरण दबा रहीं थीं कि कृष्ण के तलवों में फफोले (छाले) देखे। रूक्मिणी जी आश्चर्य में पड़ गईं। उन्होंने श्री कृष्ण जी महाराज से छाले पड़ने का कारण जानना चाहा। तब श्री कृष्णचन्द्र महाराज ने रहस्योद्घाटन करते हुए बतलाया–

श्री राधिकाया हृदयारविन्दे पादारविन्दं हि विराजते मे।
अहर्निशं प्र॰.यपाशबद्धं लवं लवार्धं न चलत्यतीव।।
अद्योष्णदुग्ध प्रतिमानतोऽङ्घ्रबुष्छालकास्ते मम प्रोच्छलन्ति।
मन्दोष्ण मेवं हि न दत्तमस्यै युष्माभिरुष्णं तु पयः प्रदत्तम्।।

अर्थात् श्री राधा जी के हृदय में मेरे चरण कमल दिन–रात प्रेमपाश में बंधे रहते हैं। एक क्षण या अर्धक्षण को भी अलग नहीं होते। आज आपने उन्हें गर्म दूध पिलाया था, इसी कारण ताप से मेरे पैरों में फफोले (छाले) पड़ गये हैं। सभी पटरानियाँ श्री राधा जी के प्रेमयोग से अति प्रभावित हुईं। भगवान अपने भक्तों की परीक्षा लेते रहते हैं तथा देखा करते हैं कि किसी को अहंकार का र॰ ॰ तो नहीं लग गया। भगवान भक्त के अहंकार को पनपने से पूर्व ही जड़ से उखाड़ फेंकते हैं।

एक बार श्री भगवान ने अपनी बीमारी का नाटक किया तथा रोग शैया पर पड़ गये। तरह तरह के उपचार कराये परंतु ठीक नहीं हुए। रोग दिनों दिन बढ़ता ही गया। एक दिन नारदजी आये, उन्होंने श्री प्रभुजी से मंत्रणा की तथा नारद से कहा, 'मेरा रोग सामान्य औषधियों से ठीक नहीं होगा। अगर मुझे मेरे परम भक्त अथवा परिजनों की चरणरज मिल जाये तो रोग का निदान सम्भव है। श्री नारद ने रूक्मिणी आदि सभी पटरानियों से चरणरज उन्हें देने को कहा, परन्तु कोई भी चरणधूलि, श्री कृष्ण को देने को तैयार न था। उन्होंने कहा, हम अपने आराध्य, पतिदेव से यह अनर्थ कैसे कर सकती हैं? हमें तो नरक में भी स्थान नहीं मिलेगा। अन्त में नारद जी बृज में गये, वहाँ गोपियों विशेषकर श्रीराधा जी से पूर्ण वार्तालाप किया तब श्री राधा जी बोलीं– 'यदि मेरी चरण धूलि से मेरे नाथ श्रेष्ठ का रोग निवारण हो, तो उन्हें अत्यन्त सुख प्राप्ति होगी। तब मैं एक बार नहीं, हजार बार चरणधूलि देने को तैयार हूँ। चाहे मुझे कितने ही नरकों में जाना पड़े। हे ऋषिवर! ले जाइये मेरी चरणधूलि। कीजिये मेरे

प्राणनाथ प्रियतम का कष्टनिवारण। यही है राधा का प्रेमयोग जिसका सार कोई विरला ही जाने। गोकुल से जब श्रीकृष्ण बलराम के साथ मथुरा चले गये, तब भी श्री राधा गोपियों से कहा करती थी। हमें प्रभु की वंशी मिली है, उसीमें हम धन्य है, मेरे नाथ जहाँ भी रहें, बस हमारी सुधि न भूलें। श्रीराधा विनय करती थी **'जैसे राखि हौं तैसे ही रहि हैं'** अतः कृष्ण के वियोग में कभी विचलित नहीं हुई। उन्हें अपने सुख की नहीं केवल अपने नाथ के सुख की चिन्ता रहती थी।

बाल्यावस्था में जब राधाजी को कृष्ण ने देखा तो श्री राधा जी की सुन्दर छवि को अपलक देखते ही रह गये तथा कहा–

बूझत श्याम कौन तू गोरी,
कहाँ रहति, काकी है बेटी, देखी नहीं कहूँ ब्रज खोरी।।

उत्तर में राधा जी बोलीं–

काहे कौं हम ब्रजतन आवति, खेलति रहति अपनी पौरी।
सुनत रहतिं स्त्रवननि नन्द–ढोटा करत फिरत माखन–दधि चोरी।।

इसके प्रत्युत्तर में श्याम ने कहा–

तुम्हरो कहा हम चोरि लैहें, खेलन चलौ संग मिलि जोरी।
सूरदास प्रभु रसिक–सिरोमनि, बातनि भुरइ राधिका भोरी।।

फिर तो उसी दिन से दोनों का मिलना–जुलना शुरु हो गया।

कंस के भय के कारण बलराम तथा कृष्ण का नाम करण संस्कार बिना जाति–बंधुओं को बुलाये श्री गर्गजी (परिवार गुरु) द्वारा बड़े गोपनीय रूप से गौशाला में ही कराया गया था। गुरुजी ने श्री नन्दराय जी को विद्या अध्ययन हेतु ग्वाला कृष्ण को संदीपन आश्रम में ले जाकर अध्ययन करने को कहा था, तथा साथ ही कहा था यह बालक कोई साधारण बालक नहीं है, असंख्य ब्रह्माण्डों के नायक अधिपति परात्तपर भगवान ने साधु–पुरुषों का उद्धार तथा कंस को मारने के लिए ही अवतार लिया है। गौलोक में श्री राधा नाम की जो पटरानी है, उसी ने राजा वृषभानु के घर पुत्री रूप में अवतार लिया है। यह सब बातें दोनों नन्दबाबा तथा वृषभानु को आपस में मित्रता होने के नाते ज्ञात थीं। गर्ग मुनि ने आगे बतलाया था कि इन दोनों, श्री राधा तथा श्रीकृष्ण का विवाह, यमुना किनारे भाण्डीरवन में निर्जन सुन्दर स्थल पर साक्षात् श्री ब्रह्माजी द्वारा ही सम्पन्न होगा। राजा वृषभानु ने गर्गमुनि की गुप्त बातों को ध्यान में रखकर स्वर्ण थालों में रत्न–आभूषण तथा तरह–तरह की सामग्रियाँ भरकर नन्द जी के घर भिजवायी जिन्हें देखकर नन्दराय जी चकित रह गये। श्री नन्दराय जी को श्रीराधा की सगाई के उपलक्ष्य में गोद भराई की रस्म पूरी करने के लिए इतनी विविध आभूषण सामग्री की मात्रायें देने की सामर्थ नहीं थी। अतः अपने बाबा के मन की बात श्रीकृष्ण कन्हैया बखूबी समझ चुके थे।

भगवान श्री कृष्णचन्द्र ने वृषभानु राजा से प्राप्त विवाह की भेंट सामग्री में से सौ मोतियों के हारों को तोड़ा तथा दाने घर के बाहर खेतों में बखेर दिये, फलस्वरूप खेतों में मोतियों की अच्छी फसल हो गयी। उन्हीं मोतियों को जो अनेकों प्रकार के थे, पृथक–पृथक बँधवा कर अलग–अलग गाड़ियों में भरकर राजा वृषभानु के भवन राधा की गोद भराई के लिये भिजवाये जिससे बाबा नन्दराय का सम्मान बना रहा। जहाँ श्री कृष्ण कन्हैया ने मोती बखेरे थे, वह स्थान सरोवर बन गया, जो कालान्तर में 'मुक्तासरोवर' कहलाया जो सभी तीर्थों का राजा है।

एक दिन श्री नन्दराय जी अपने लाड़ले कन्हैया को गोद में लेकर गायें चराते हुए भाण्डीर वन में जा पहुँचे। अखण्ड ब्रह्माण्ड नायक योग योगेश्वर श्रीकृष्ण जी की इच्छा से वायु का एक भयंकर तेज झोंका आया तथा बादलों की घटा छा गयी, चारों तरफ घना अँधकार छा गया। कदम्ब तथा तमाल के पेड़ टूट कर धरणी पर गिर गये। श्री नन्दनन्दन भयभीत होकर रोने लगे। उसी समय वृषभानु लली श्री राधा जी आ पहुँची। उनके दिव्य तेज को देख, नन्दराय जी, मुनि कुलगुरु गर्ग महाराज के द्वारा बताये गुप्त संकेत का रहस्य समझने लगे। अतः नन्दराय ने श्री राधा से कहा अ ने प्राणवल्लभ कृष्ण को मेरी गोदी से ले जाकर, यशोदा को देकर आजा। तब श्री राधा ने मुस्कराकर "कृष्ण" को अपने अंक (गोदी) में भर लिया तथा उन्हें दिव्यधाम की शोभा जहाँ अभी–अभी निर्मित हुई थी, भाण्डीर वन के स्थल में ले गयी। भगवान की दिव्य लीला हुई कि वह स्वयं रोते हुए बालक से किशोर बन गये। वहीं एक दिव्य सुन्दर सिंहासन पर दोनों प्रिया तथा प्रियतम बैठ गये। उसी समय सृष्टिकर्त्ता विधाता ब्रह्मा जी आकाश मार्ग से आये तथा कमलासन से उतरकर दोनों की स्तुति करने लगे। लोक व्यवहार के लिये दोनों की वैधानिक वैदिक रीति से पूर्ण मन्त्रोच्चार से विवाह संस्कार कराया। जैसे पिता अपनी पुत्री का कन्यादान करता है, ठीक उसी प्रकार ब्रह्मा जी ने श्री राधा का हाथ, श्री कृष्ण के हाथ में सौंप दिया। उस मय देवों ने आकाश से पुष्प वर्षा करके अपनी प्रसन्नता व्यक्त की तथा विद्याधरों, देवांगना । सभी ने हर्ष ध्वनि से नृत्यगान किये। ब्रह्मा जी ने दोनों से दक्षिणास्वरूप श्रीकृष्ण भगवान से युगल चरणों की भक्ति ही दान में माँगी तथा आकाश से अपने ब्रह्मलोक को वापिस हो गये। श्री लीलाधारी कृष्ण भगवान ने उस दिव्य स्थान में राधा के संग में अनेकों प्रकार से विहार किया। तत्पश्चात् लीलाधारी पुनः बालरूप बन गये, तथा राधा रानी ने उन्हें ले जाकर, माता यशोदा को सौंप दिया तथा अपने घर कीर्तिभवन बरसाना पहुँच गई।

मेरे विचार से यह दिव्य गाथा कोई–कोई ही जानता है। आमतौर पर लोग श्री राधा–कृष्ण के मिलन को तरह–तरह के प्रसंगों से जोड़कर देखते हैं, जो उनका भ्रम मात्र है। लोक व्यवहार की दृष्टि से दोनों में परम सत्य–सात्विक, ब्रह्म प्रेम ही बना रहा। पति–पत्नि के रूप में भूमण्डल पर व्यवहार नहीं किया गया।

जब तक कृष्ण गोकुल में रहे, तब तक दोनों का मधुर मिलन होता रहा, परंतु जब अक्रूर जी के साथ वह मथुरा चले गये तब राधा तथा गोपियों को उनसे विरह योग हो गया।

सोलह हजार रानियाँ तथा आठ महारानियों के होते हुए भी रात्रिकाल में स्वप्नावस्था में अकसर राधे–राधे पुकार उठते थे। श्री राधा जी के चरणों की वन्दना करते हुए उद्धवजी कहते हैं–

वन्दे राधापदाम्भोजं ब्रह्मादिसुरवन्दितम्।
यत्कीर्ति कीर्तनेनैव पुनाति भुवनत्रयम्।।

अर्थात् मैं श्री राधा के उन चरण कमलों की वन्दना करता हूँ, जो ब्रह्मा आदि देवताओं द्वारा वन्दित हैं तथा जिनकी यश गाथा तीनों लोकों में गायी जाती है। राधा के लिए कहा है–

देवी कृष्णामयी प्रोक्ता राधिका परदेवता।
सर्वलक्ष्मी मयी सर्वकान्तिः सम्मोहनी परा।।

अर्थात् श्री राधारानी कृष्णमयी, परदेवता, सर्वलक्ष्मीमयी, सर्वकान्तिस्वरूपा तथा परम सम्मोहिनी कही गयी हैं। चैतन्य चरितामृत में कहा गया है–

अनन्त गुण श्रीराधिकार पंचिस प्रधान।
सेइ गुणेर वश हय कृष्ण भगवान।।

ललित किशोरी जी कहते हैं–

निशि दिन निरखो जुगल माधुरी रसिकन ते भट भेरो।
ललित किशोरी तन मन व्याकुल श्रीवन चहत बसेरो।।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि श्री राधिका जी श्री कृष्ण से पर्याप्त रूप से बड़ी थीं। इसीलिए श्री नन्दराय जी ने कृष्ण को अपनी गोद से राधा जी को सौंप कर नन्दरानी तक पहुँचाने के लिए कहा था। इसी भाव से प्रायः बृजमण्डल में निम्न गीत गाया जाता है–

छोटो सो बालमा (कान्हा) मेरे, आंगना में गिल्ली खेले।
पनियां भरन जाऊँ तो, कहे मोहि गोदी लेले।।

श्री कृष्ण ब्रज छोड़ कर मथुरा चले गये, जहाँ पापी कंस का वध किया, अपने माता–पिता श्री वसुदेव व देवकी को कारागार से मुक्त कराया, साथ ही अपने नाना श्री उग्रसेन की बेड़ियाँ खुलवायी तथा मथुरा का राज्य अपने नाना को सौंप दिया तथा मथुरा में ही स्वयं रहने लगे। उस समय से राधा जी, माता यशोदा के साथ नन्दभवन में ही रहने लगी थीं। वह कृष्ण को सदैव अपने सानिध्य में पाने लगीं क्योंकि दो अंग होते हुए भी एकाकार, एक प्राण रहे, यही उनकी दिव्यता है।

''सद्गुरु परब्रह्मणेनमः

अमृत वचन

डा. विजय सिंह

महात्मा चरणदास मुगल शासन के अन्तिम कालों में हुए है। योग, ज्ञान, भक्ति, सदाचरण एवं सद्गुरु के प्रति शिष्य का कैसा व्यवहार एवं आचरण होना चाहिए जिससे उसके आध्यात्मिक अनुभूति में कोई व्यवधान न पड़े, इन सब बातों का विवरण बेबाक रूप से महात्मा चरण दास ने धर्म जहाज नामक रचना में की है।

चरणदास यों कहत हैं, सुनो गुरु शुकदेव।
ज्यों करि हो निःकर्मही, ताको कहिए भेव।।

निष्कर्म कर्म के रहस्य के बारे में चरणदास अपने सद्गुरु शुकदेव जी से पूछते हैं। गुरुदेव ने कहा–चरणदास! हम सारे कर्म के भेद बताकर तुम्हारे संदेह को मिटाते हैं। सुनो–

खोटी करणी नरकहि जावै। पाप क्षीण मृतलोकहि आवै।
भले कर्म जा स्वर्ग मँझारा। पुण्य क्षीण मृत लोकहि डारा।।
ऐसे लोक लोक फिरि आवै। कर्म न छुटे दुःख सुख पावे।।
जैसे कर्म छुटे सो कहूँ। तो पै दया करतही रहूँ।।
खोटे कर्म सो सकल निवारे। शुभ करणी को नीके धारे।।
जाके फल को मन नहिं लावै। है निष्कर्म परम पद पावै।।
फल त्यागै सोइ चरण दासा। चरण कमल की राखै आसा।
सो पावे निर्वान पद, आवागमन मिटाय।
जन्म मरण होवे नहीं, फिर फिर काक न खाय।।

शिष्य को कौन सा बुरा कर्म नहीं करना चाहिए– झूठ नहीं बोलना चाहिए, सत्य को तप के समान हृदय में रखना चाहिए, क्योंकि झूठ बोलने वाले शिष्य का किया गया मंत्र जप से उत्पन्न पुण्य नष्ट हो जाता है। ऐसे झूठ बोलने वाले शिष्य को कभी सिद्धि लाभ नहीं होता। दूसरी बात– निन्दा नहीं करनी चाहिए। निन्दा करने से दूसरों के अवगुण स्वयं निन्दा करने वाले के चित्त में स्थान बना लेता है। निन्दा करने वाले को भारी पाप का भागी होना पड़ता है। इससे भी उसको दिव्य सद्गुरु प्रदत्त मंत्र के जप का फल प्राप्त नहीं होता।

तीसरी बात दीक्षित साधक को सचेष्ट होकर नहीं करना चाहिए। वह है कड़ुआ वचन, हृदय पर आघात करने वाला वचन। सदैव हितकारी वचन ही साधक को बोलना चाहिए। कठिन वचन बोलने वाले का तपस्या खोवै।

साधक को मौन का अवलम्बन लेकर मंत्र, ध्यान में अपने को क्रियारत रखना चाहिए।

चौथे मौन गहे रहैं, लक्षण अधिक अमोल।
कम लगै जग बात सों, हरि चर्चा में खोल।।

संत–योगी का कथन है यदि बोलना ही है तो अपने को कृतार्थ करने वाले सद्गुरु महिमा का वर्णन करो। भगवत कृपा की चर्चा करो। संसार तुम्हारे सिर पर नहीं रखा है फिर यह सोच–सोच कर क्यों मरे जा रहे हो कि संसार तुम्हारे द्वारा ही चल रहा है।

साधक को शरीर से होने वाले तीन अवगुणों से सदा बचने की सलाह संत चरण दास ने बताया है– चोरी, जारी (पर स्त्री लोलुपता) और हिंसा से बचना ही होगा।

तनसों चोरी कबहुँ न कीजे। काहूकी नहिं वस्तु हरीजे।।
चोरी त्यागै सो सतवादी। तापर रीझैं राम अनादि।।
जारी के कर्म ऐसे मानो। पर तिरिया को माता जानो।।
तीजी हिंसा त्यागहि कीजे। दया राखि जीवन सुख दीजे।।
दया बराबर तप नहिं कोई। आतम पूजा तासों होई।।

आज के तर्क प्रधान मनुष्य बातों से ही आध्यात्म जगत को जान लेने का उपक्रम करते रहते हैं। करनी होनी चाहिए। उसको ऐसा अनुभव कैसे हुआ। हमको क्यों नहीं। अपने अन्तर में मिथ्या भाव भरकर साधना से च्युत हो जाते हैं। आत्म प्रकाश पाने के लिए वैसा बनना होगा। गुरु मुख होना होगा। जिसने अपने सारे संचित कर्मों को ज्ञानाग्नि में जला डाला है उसे ही साधु कहा गया है। क्योंकि उसने तन, मन, वचन को साध लिया है। ''समत्वं योग उच्यते''। इसलिए यदि हमें गुरु सपूत होना है तो–

पहिले साधे वचन को, दूजे साधे देह।
तीजे मन को साधिये, गुरु सों राखै नेह।।
तिनके ही उपदेश को, राखै अपनो चित्त।
ताको मनन सदा करै, भूलै ना नित वृत्त।।

नित वृत्त है सद्गुरु प्रदत्त मंत्र का अनवरत जप व ध्यान। संसारी कर्मों को करते हुए भी उन पावन चरण कमलों का स्मरण बना कर रखने से संसार का कार्य भी सहज सिद्ध होता है तथा अध्यात्म भाव भी बना रहता है। यह दोनों बात बनी रहे इसके हेतु मन में उत्पन्न होने वाले सूक्ष्म परंतु प्रबल विकारों की समझ एवं निराकरण करना होगा। वे विकार हैं– निकृष्ट विचार, बैर भाव तथा अहंकार।

मन ही मन में भोगै भोगा। हाथ न आवै उपजै शोगा।।
भांति भांति चितवनि उपजावै। बुरे मनोरथ कर्म लगावै।।

जो चितवै तो इष्ट गुरु चरणा। ब्रह्म विचार सदा ही करना।।
खोटी चिंतन चितवै नाहीं। सदा रहे थिरता के माहीं।।
दूजा कर्म जु बैर है। महा पाप की पोट।।
सदा दिया जलता रहै। करे खोटहि खोट।।
बैर भाव में अवगुण भारी। तन छूटे जा नरक मँझारी।।
बैरी याद रहै मन माहीं। प्रभुसों हेत लगन दे नाहीं।।

अब तीसरा मन का प्रबल परंतु अदृश्य विकार अहंकार है। सतो प्रधान कर्मों का भी अहंकार अत्यन्त मोह पैदा करता है। कहते हैं कि–

कंचन तजना सहज है सहज त्रिया का नेह।
मान, बड़ाई, ईर्ष्या दुर्लभ तजना एह।।

संत चरणदास का कहना है बिना गुरुकृपा के अहंकार से छुटकारा पाना सम्भव नहीं है। अहं का प्रसार ही जगत है। अहं के आवरण से ही हम सभी आत्मा के स्वरूप को विस्मृत किये हुए हैं।

मैं अरुमोर, तोर तैं माया।
जेहि बस कीन्हें जीव निकाया।। (मानस)

वे कहते हैं–

अरु तीजा जानो अभिमाना।
गुरु कृपासों ताको जाना।
हूं हूं हूं हूं करता रहे।
नीची होय तो अन्तर दहै।
कबहूँ फूले मन के माही।
मो समान कोउ ऊँचा नाहीं।।
मैं ही योंकर योंकर करिया।
मो बिनकारज कछू न सरिया।।
अपने को चतुरा बहु जानै।
और सबन को मूरख मानै।।
अभिमानी ऐसा मन लावै।
हरि के गुण किरिया बिसरावै।।

अहंकारी कृतघ्नी हो जाता है। सद्गुरु के उपकार को भी भुला देता है। जगत में वह अपने सामने किसी को भी श्रेष्ठ नहीं समझता है।

अतः सिद्धयोग में अन्तर जगत की यात्रा करने वाले हम गृहस्थ हों या ब्रह्मचारी। हम साधक हो या गृहस्थ। श्री अगड़धत्ता जी के प्रसंग को चित्त में स्थान देकर साधना शुचिता, समर्पण, त्याग, वैराग्य की थाती दिनों दिन बढ़ाते रहना चाहिए। सद्गुरु प्रदत्त अनुभूतियों के प्रकाश में सांसारिक दोषों से बचते हुए अध्यात्म जगत को प्रकाशित करने हेतु उद्यम करें।

शोक संवेदना

■ अत्यन्त दु:ख से पाठकों को सूचित करते हैं कि आगरा वाले राधारमन अग्रवाल के छोटे भाई राधा किशन अग्रवाल का दिनांक 2 मई 2009 को देहावसान हो गया है। उन्होंने अपने पीछे दो बेटी और एक बेटे को छोड़ा है। वे 58–59 वर्ष के थे। इस दु:खद बेला में शोक संतप्त परिवार को सिद्धयोग परिवार अपनी हार्दिक संवेदना प्रेषित कर रहा है।

■ बड़े दु:ख के साथ सूचित करना पड़ रहा है कि ललितपुर निवासी श्री सूर्यकान्त पाण्डेय के पूज्य पिता का लम्बी बीमारी के बाद देहावसान हो गया है। अभी दो मई को। वे कुछ महीनों से गले के कैंसर से पीड़ित थे। इस दु:ख की बेला पर सिद्धयोग परिवार हार्दिक संवेदना प्रकट करता है।

■ अत्यन्त दु:ख से पाठकों को सूचित किया जाता है कि दतिया निवासी श्री धर्मज्ञ सिंह सिसौदिया का 6 मई को देहावसान हो गया है। इस दु:ख के समय पर सिद्धयोग परिवार अपनी हार्दिक संवेदना प्रगट करता है। भगवान् दु:खी परिवारी जनों को इस असहनीय दु:ख को सहन करने की क्षमता प्रदान करें।

जय गुरुदेव!

–सम्पादक 'सिद्धयोग'

गुरुदेव की कृपायें

त्रिजुगी नरायन मिश्र, इन्दौर

गुरुदेव की कृपायें, हर दम हैं साथ अपने,
सब कुछ उन्हीं पे छोड़ा, अब जो भी हो सो हो।

मरजी बगैर उनकी पत्ता भी नहीं हिलता,
दर्शक हो मात्र देखो, जब जो भी हो सो हो।

अपनी खुशी से कुछ भी होता नहीं कभी भी,
सत कार्य करते रहिये, फिर जो भी हो सो हो।

अधिकार कर्म का है फल का नहीं मिला है,
करते रहो लगन से, फिर जो भी हो सो हो।

जीवन में जो भी पाया, प्रभु की ही हैं कृपायें,
उनका ही है सहारा, अब जो भी हो सो हो।

संकट की हर घड़ी में, श्री चरण शरण में जाओ,
अरपळ हो आये आँसू, फिर जो भी हो सो हो।

कुछ भी छिपा न उनसे सब कुछ नजर में उनकी,
पल पल की खबर रखते, अब जो भी हो सो हो।

मैं ही नहीं अकेला, जिसने भी जब पुकारा,
सब को मिला सहारा अब जो भी हो सो हो।

कितने ही उद्धरण, सद् ग्रन्थों में भरे हैं,
प्रभु की शरण में जाओ, फिर जो भी हो सो हो।

मन का वैज्ञानिक रहस्य

बल्लभाचार्य शर्मा, एम.ए.

पातञ्जलि योगदर्शन में लिखा है–

'योगश्चित्तवृत्ति निरोध:।'

अर्थात् चित्त की वृत्तियों का रुक जाना ही योग है। यहाँ पर हम चित्त के स्वरूप अर्थात् मन के स्वरूप को समझने का प्रयत्न करेंगे। हमारे ग्रन्थों में आत्मा को शरीर में सर्वश्रेष्ठ माना है। जिस व्यक्ति की आत्मा स्वच्छ होगी, उसका मन भी स्वच्छ होगा। सर्वश्रेष्ठ माना है। जिस व्यक्ति की आत्मा प्राचीन ग्रन्थों में देखते हैं। चित्त की अनेक वृत्तियों के बारे में भी योग–दर्शन में पढ़ने को मिलते हैं। यहाँ पर केवल हम पाश्चात्य दर्शन और मनो वैज्ञानिकों के विचारों को जानकर अपने प्राचीन विद्वानों के विचारों से उन पर तुलनात्मक रूप से मनन करेंगे।

पहला प्रश्न उठता है कि मन क्या है? वैसे तो इसका बहुत विस्तृत अर्थ है परंतु थोड़े शब्दों में हम इतना ही कह सकते हैं कि मन मस्तिष्क का क्रियात्मक रूप है। आदिम युग में लोगों ने अपने चारों ओर के संसार को समझने का जैसा प्रयत्न किया उसी में उनकी मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया भी आ जाती है। आकाश के ग्रहों का हमारे जीवन में उतना प्रभाव नहीं है जितना सोने और जागने की लयों का। सवेगों के उतार चढ़ाव का सामान्य स्थिति में विचलित होने का। दार्शिनिकों में एक–एक विषय की ओर सामान्य प्रकृति दिखाई पड़ती है और वह है, प्रकृति और आत्मा का विचार। रोग, मतिभ्रम अथवा मूर्च्छा में कोई ऐसी वस्तु है जो लुप्त हो जाती है और वह स्वस्थ होने पर फिर से प्राप्त हो जाती है। इससे प्रत्येक चेतन (Psychic Entity) या असंग आत्मा का बोध होता है।

आदिम काल में पूर्वज लोग शरीर और आत्मा की सत्ताओं को भिन्न–भिन्न दो रूपों में मानते हैं। उनकी दृष्टि में इन दोनों में निरन्तर क्रिया–प्रतिक्रिया होती रहती है। ये दोनों एक दूसरे से पृथक तत्व हैं एक स्थूल शरीर और दूसरा असंग आत्मा। आदिम काल के मनोविज्ञान में सामान्यत: देह की मृत्यु हो जाने के बाद आत्मा के जीवित रहने का विश्वास पाया जाता था। परंतु आत्मा की स्थायी सत्ता या अमरता के विचार की केवल झलक मात्र ही मिलती थी अथवा शून्य के समान ही थी। आदिम जाति के लोगों के व्यावहारिक मनोविज्ञान में ऐसे उपायों का साधन पाया जाता है जिनमें आत्मा के ऊपर दबाव डालकर या लोभ दिखाकर उसे मृत शरीर में फिर से बुलाने का आग्रह किया गया है और ऐसे भी उपायों पर विचार किया गया है जिनमें आत्मा आने वाली विपत्तियों का सामना कर सके।

ईसा से एक सहस्त्राब्दी पूर्व यूनानी निवासियों की धार्मिक प्रथाओं में ये विचार

बिल्कुल स्वच्छ रूप से दिखाई पड़ते हैं। यूनानी दर्शन इन्हीं विचारों का परिणाम है। उसमें प्रकृति की व्याख्या विभिन्न रूपों में मिलती है। उसी के अन्तरर्गत मानव शरीर और आत्मा के सम्बन्धों का भी विचार हुआ है। उन्होंने प्रेतात्माओं पर विचार किया है। यूनानियों के प्रारम्भिक मनोविज्ञान में आत्मा के कार्य और व्यवहार सम्बन्धी नियमों का अध्ययन की प्रचुरता में हुआ है। वहाँ के दार्शनिक विद्वान् विचार करते–करते इस निश्चय पर आये कि परिमाण में हर एक वस्तु जल, अग्नि, गति अथवा मन के रूप में ही अवशिष्ट रह जाती है। इस प्रकार उन्होंने शरीर और आत्मा के द्वैतवाद को मिटाकर वस्तु मात्र की एकता का आधार ढूँढने का ही प्रयत्न किया। उनकी दृष्टि में प्रकृति के पदार्थों में भौतिक एकता विद्यमान है। आरफ्प्स से सम्बंधित रहस्यों में देह के भीतर और देह लाभ के अनन्तर आत्मा की शुभ गति का स्पष्ट वर्णन हुआ है। वे लोग जीवात्माओं की स्वतन्त्र सत्ता और मृत्यु के उपरान्त उनके पारस्परिक मिलन में भी विश्वास करते हैं। प्लेटो का यह भी कहना था कि देह छोड़ने के बाद आत्मा की दृष्टि कहीं अधिक उन्मुक्त हो जाती है तथा उसे यथार्थ का बोध होने लगता है। यूनानी विचारकों ने विशेष रूप से मन के जिन–जिन विविध रूपों का विकास किया है वे आधार रूप से अभी तक मनोविज्ञान के सिद्धान्त में जीवित चले आ रहे हैं। इन अवधारणाओं का सम्बन्ध तीन विद्वानों से है–डिमोक्रिटस, प्लेटो और अरस्तू।

रेनीडेकार्टश महोदय ने छः प्रकार के मनुष्य में संवेग बताए–रति, अरति, विस्मय, हर्ष, शोक और इच्छा। उनका विश्वास था कि ये ऐसे संवेग हैं जो अनुभव से नहीं, अपितु अवश्यम्भावी रूप से स्वतः उत्पन्न होते हैं। संवेगों में ईश्वर और आत्मा या अपने आप से सम्बन्धित भाव प्रधान हैं। एक दूसरे विद्वान् थामस हाब्स ने बताया कि मनुष्य कुछ ऐसे कार्य करता है जो मूल प्रवृत्ति से प्रेरित होते हैं। ये मूल प्रवृत्तियाँ हैं भय, मान की आकांक्षा तथा समाज में रहने की प्रवृत्ति। उन्होंने यह भी बताया कि वस्तुओं के साथ हमारा पहला सम्बन्ध इन्द्रियों के द्वारा होता है इसलिए हमारे मानसिक व्यवहार की सारी जटिलतायें इन्द्रियों के व्यवहार पर निर्भर हैं। वे इन्द्रियाँ ही हमारी चेतना की अवयव हैं, जिनसे हमारे अनुभव सम्बन्धित रहते हैं। जौनलाक ने बताया कि इन्द्रियां बाह्य वस्तु का अनुभव करके बुद्धि को पहुँचाती हैं। वकीलों ने बताया कि दृष्टा की दृष्टि ही वास्तविक सत्ता है। डेविड ह्यूम ने बताया कि समस्त मानवीय चेतना की परीक्षा कर लेने के बाद भी आत्मा की सत्ता में कोई प्रमाण नहीं है। जिसको हम अपनी आत्मा कहते हैं वह भी आत्मा नहीं है वह केवल शारीरिक संवेदना का समूह मात्र है। उन्होंने बताया कि मनुष्य के विचार अनन्त धारा में परिवर्तित होते रहते हैं। इनके पीछे साहचर्य की भांति स्वाभाविक रूप से कर्म करती है। थौमस रीड ने बताया कि हमारे मन में यथार्थ वस्तुओं को देखने की क्षमता है तथा हम विवेकात्मक ढंग से विचार कर सकते हैं तथा कार्य भी कर सकते हैं। हमारे अन्दर बौद्धिक शक्तियाँ भी हैं जिनके ऊपर हम समस्याओं को हल करते समय विश्वास कर सकते हैं। हमारे लिये यह भी संभव हो जाता है कि हम बाह्य जगत को ठीक

प्रकार से समझ ले और उसके सम्बन्ध में यह भविष्यवाणी कर सके कि आगे क्या होगा। क्रिश्चियन वाल्फ ने बताया कि आत्मा की सुस्पष्ट शक्तियों से एक आत्मा है। किंतु उनके द्वारा अनेक क्रियायें होती है। मस्तिष्क की कुछ शक्तियाँ होती हैं जैसे स्मरण शक्ति तर्क शक्ति, संकल्प शक्ति आदि। कौंडिल्ला । ने बताया कि मन बहुत से अवयवों का समूह है। केबेनिस का विश्वास था कि जब तक मस्तिष्क में जाग्रति नही तब तक मानसिक प्रक्रिया प्रारम्भ न होगी केवल यान्त्रिक क्रियाएँ होती रहेंगी।

वाटसन महोदय ने पशुओं के ऊपर विचार करते हुए मनुष्यों के लिए भी कह दिया कि मस्तिष्क मे क्या हो रहा है उसकी कल्पना व्यर्थ है। परंतु उनका यह सिद्धान्त कितनी मान्यता रखता है यह तो हम स्वयं विचार करके ही बता सकते हैं। वुडवर्थ का इसके विरोध मे कहना था कि मनुष्य अपने व्यवहार का कुछ सीमा तक निरीक्षण कर सकता है पैरेलेलि स्टो (समानान्तरवादीयों थी) का कथन है कि प्राणी के अन्दर दो प्रकार की प्रणालियाँ साथ–साथ कार्य करती है एक मानसिक दूसरी शारीरिक।

आगे चलकर मनोवैज्ञानिकों ने जब मन की चेतन अवस्था के ऊपर विचार करते समय यह भी देखा कि कुछ विचार ऐसे भी है कि जिन्हें हम भूल जाते है वे मन से सर्वथा अलग नहीं हो जाते बल्कि कभी स्मरण भी हो आते हैं जिसका अर्थ हुआ कि वे हमारे मन में थे। इस पर मनोवैज्ञानिकों ने कहा कि ये विचार हमारे अचेतन मन में थे। अचेतन मन के ऊपर मनोविज्ञान के क्षेत्र में फ्रायड का महत्वपूर्ण स्थान है। उन्होंने अचेतन मन के होने के प्रमाण उपस्थित किया और उसके ऊपर विस्तृत अध्ययन किया। उन्होंने इसको मानसिक अचेतन कहा। यह कुछ मानसिक भाग है जो छिपा रहता है। जो चेतना होती है वह दमन के द्वारा अचेतन हो जाया करती है अर्थात् चेतनमन में विचार आने पर उनका दमन किया जाय तो वे अचेतन मन मे चले जाते हैं। अचेतन मन मुख्य रूप से प्रेरणाओं से निर्मित होता है। अर्थात् कोई भी कार्य करने पर उसके पीछे अचेतन प्रेरणा का हाथ होता है। कोई भी मानसिक तथ्य आकस्मिक नही होता, किंतु उसके पीछे कोई–न–कोई कोई कारण अवश्य होता है और वह कारण अचेतन मन मे विद्यमान होता है उसी से प्रेरित होकर वह मानसिक तथ्य उत्पन्न होता है। यह अचेतन के प्रेरक चेतन में आना चाहते है परंतु सुखद न होने के कारण नहीं आ पाते। उनका कहने का तात्पर्य था कि हमारे अन्दर इच्छाएँ उठा करती है परंतु कुछ इच्छाएँ ऐसी होती है जिनको विभिन्न कारणों वश हम पूर्ण नहीं कर सकते अतः उनका दमन कर देते है जो कि दमित होने पर अचेतन में चली जाती है ये समय मिलने पर बाहर आ जाती है तथा हमारे व्यवहार को भी संचालित करती है। हमारा व्यवहार अधिकांश अचेतन मन द्वारा ही संचालित होता है। इन्होंने व्यक्ति में आत्ममोह को बताया कि यह ऐसा तथ्य है कि जो जीवन के आरम्भ से लेकर अन्त तक विद्यमान रहता है। इन्होंने बताया कि मनुष्य के मन में तीन प्रकार से क्रम होता है– अहं, इदं और परम अहं। अहं से तात्पर्य है कि जो मन सोच विचार कर कार्य करे।

अहं का कार्य अचेतन का प्रतिरोध करना है। अर्थात् अचेतन की दमित इच्छायें जब चेतन में आने का प्रयत्न करती हैं तो अहं उनका–प्रतिरोध करने का प्रयत्न करता है। अहं पूर्ण सामाजिक होता है तथा व्यक्ति को सामान्य बनाए रखता है। इद पूर्ण रूप से अचेतन होता है। यह अचेतन की इच्छाओं को पूरा करने का प्रयत्न करता रहता है। यह सुख के नियम का पालन करता है। यह मन में उठी हुई बुरी भावनाओं की पूर्ति करने का प्रयत्न करता है। यह व्यक्ति को असामाजिक तथा असन्तुलित बनाता है। इसके विपरीत परम अहं होता है जो प्रत्येक कार्य में हस्तक्षेप करता है। यह भी व्यक्ति को असामाजिक बना असन्तुलित बनाता है। बहुत से व्यक्ति इतना उच्च आदर्श, अपने सामने रख लेते हैं कि उसके पूरा करने के प्रयत्न में उनका मस्तिष्क असन्तुलित हो जाता है वे प्रत्येक कार्य में आदर्श उपस्थित कर देते हैं जिससे कोई भी कार्य करना सम्भव नहीं होता। वैसे तो प्रत्येक व्यक्ति में इद और परम अहं थोड़ी बहुत मात्रा में होता है परंतु कुछ लोगों में इसकी बहुलायत होती है। अधिकतर व्यक्ति अहं प्रकृति वाले ही होते हैं। स्वप्न कि सिद्धान्त में फ्रायड ने बताया कि स्वप्न दिन की दमित इच्छाओं का परिवर्तित रूप देता है जो क रात्रि में परम अहं के सोते रहने के कारण निर्विघ्नरूप से अचेतन मन से चेतन मन में आ जाते हैं।

स्मरण तथा विस्मरण के ऊपर अध्ययन करते समय मनोवैज्ञानिकों ने यह देखा कि कुछ बातें तो ऐसी हैं जो हम सदैव के लिए भूल जाते हैं जो प्रयत्न करने पर भी स्मरण नहीं आतीं वे अचेतन मन में चली जाती हैं। परन्तु कुछ ऐसी भी बातें होती हैं जिन्हें थोड़ा सा प्रयत्न करने पर ही हमें याद आ जाती हैं, इसके लिए मनोविज्ञानिकों ने बताया कि ये हमारे अवचेतन मन में रहती हैं। अवचेतन मन, चेतन और अचेतन मन के बीच की रेखा है जिसमें थोड़ा प्रयत्न करने पर बात चेतन में आ जाती है तथा थोड़ी सी लापरवाही करने पर अचेतन में चली जाती है। हमारे मन में अचेतन का 80 प्रतिशत भाग रहता है, चेतन का 15 प्रतिशत तथा अवचेतन का 5 प्रतिशत भाग रहता है। इस प्रकार अचेतन मन का ही सबसे अधिक भाग होता है। अतः यही महत्वपूर्ण है। कुछ आधुनिक विचारधारा वाले व्यक्तियों अधिकतर चार्वाक दर्शन को मानने वाले व्यक्तियों का कथन है कि वही व्यक्ति महापुरुष बन सकता है जो पहिले सब इच्छाओं की पूर्ति कर ले उनका दमन न करे, अन्यथा दमित होकर वे हमारे अचेतन मन में जाकर हमसे त्रुटि पूर्ण व्यवहार करायेंगी तथा हमें असामान्य बनायेंगी। मनोवैज्ञानिक ढंग से तो यह बात ठीक है परंतु इस प्रकार से कोई व्यक्ति महापुरुष बना नहीं है। इसका कारण यही है कि जो व्यक्ति एक बार इच्छा पूर्ति में ही लग गया तो वह उन असीमित इच्छाओं की पूर्ति में ही अपना जीवन व्यतीत कर देता है और मरते समय तक भी इच्छायें बनी रहती हैं। परन्तु कामी पुरुष इस प्रकार की मिथ्या धारणा अपने मन में बैठाकर भोगविलास में लीन रहते हैं और उसी में अपना अनमोल जीवन व्यतीत कर देते हैं। अपने चारों ओर व्यक्ति को इस प्रकार का वातावरण बनाना चाहिए जिससे कि ऐसी इच्छायें उत्पन्न ही न हों जिनका दमन करना पड़े और यह कोई

कठिन नहीं है।

युंग ने दो प्रकार के व्यक्ति बताए। एक तो बहिर्मुखी दूसरे अन्तर्मुखी। बहिर्मुखी व्यक्ति वे होते हैं जो सदैव बाहरी दुनिया में ही लीन रहते हैं। सदैव हँसते रहते है दूसरों से शीघ्र घुल मिल जाते है परन्तु अन्तर्मुखी व्यक्ति इसके विपरीत अपने आप में ही हर समय लीन रहते है उन्हें बाहरी दुनियाँ से कोई मतलब नहीं रहता अपने मन में ही ताने–बाने बुनते रहते हैं। ऐसे व्यक्ति असामाजिक तो होते है परन्तु अधिकतर ऐसे व्यक्ति बुद्धिमान पाए हैं। बड़े–बड़े आविष्कारक अन्तर्मुखी ही होते हैं। अधिकतर व्यक्ति बहिर्मुखी एवं अन्तर्मुखी दोनों का मिश्रण पाये जाते हैं ऐसे व्यक्ति सामान्य होते हैं तथा समय देख कर कार्य करते हैं।

तुम किसी की सहायता नहीं कर सकते, तुम्हें केवल सेवा का अधिकार है। प्रभु की संतान की, यदि भाग्यवान हो तो, स्वयं प्रभु की ही सेवा करो। यदि ईश्वर के अनुग्रह से उसकी किसी संतान की सेवा कर सकोगे तो तुम धन्य हो जाओगे। अपने को ही बहुत बड़ा मत समझो। तुम धन्य हो, क्योंकि सेवा करने का तुम्हें अवसर मिला है और दूसरों को नहीं मिला। यह सेवा तुम्हारे लिए पूजा तुल्य है।

–स्वामी विवेकानन्द

श्री मद्भगवद्गीता
एक सार्वभौम एवं सार्वकालिक ग्रन्थ

भगवान् वेदव्यास विरचित 'महाभारत' एक महान् ग्रन्थ है। इस महाकाव्य में एक लाख श्लोक उपलब्ध हैं। इसी महाकाव्य के महान् कलेवर में श्रीमद्भगवद्गीता का महान् उपदेश भगवान् श्रीकृष्ण के मुखारविन्द से महाधनुर्धर अर्जुन को दिया गया है। भगवद्गीता अठारह अध्यायों में है तथा इसमें विद्यमान श्लोकों की कुल संख्या मात्र 700 है।

महाभारत के एक लाख श्लोकों के सामने सात सौ श्लोकों के इस ग्रन्थ को लघुतर संख्या की दृष्टि से तो कोई भी कह सकता है परंतु यदि इन श्लोकों के अर्थ–गाम्भीर्य का मनन व चिन्तन करना आरम्भ करें तो यह महत्तर ग्रन्थ सिद्ध होता है। मनुष्य मात्र के जीवन–पक्ष में आने वाली हर पहेली का समा ान हमें इस ग्रन्थरत्न में सर्वथा उपलब्ध है।

यद्यपि महाभारत के विषय में यह सूक्ति सामान्यतया प्रचलित व प्रसिद्ध है–

अर्थे धर्मे च कामे च, मोक्षे च भरतर्षभ।
यदिहास्ति तदन्यत्र, यन्नेहास्ति न तत् क्वचित्॥

अर्थात् धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष, इस पुरुषार्थ चतुष्टय के सम्बन्ध में हे भरतश्रेष्ठ! जो विवेचन या विवरण इस महाभारत में उपलब्ध है, वह अन्यत्र भी विद्यमान है और जो इस विषयान्तर्गत विवेचना इस महाभारत में नहीं हुई है वह अन्यत्र कहीं नहीं है।

स्पष्ट है इससे महाभारत की उपादेयता पुरुषार्थ चतुष्टय के प्रसङ्ग में। मनुष्य मात्र के जीवन में धर्म से लेकर मोक्ष तक की सीढ़ियाँ इसी महान् ग्रन्थ के अनुशीलन से गन्तव्य रूप में प्राप्त हैं। स्थान–स्थान पर कौरव पाण्डवों के कथाक्रम की निरन्तरता के साथ–साथ जो विशद् व्याख्यायें पुरुषार्थ चतुष्टय की इस महान् ग्रन्थ में उपलब्ध हैं वह अन्यत्र एकत्र रूप में दुर्लभ हैं।

अब हम भगवद्गीता के विवेच्य–विषय पर आते हैं। सात सौ श्लोकों में तो 'गागर में सागर' की उपमा अक्षरशः सत्य सिद्ध होती है इस ग्रन्थरत्न के निरन्तर अनुशीलन, पठन, मनन तथा चिन्तन के द्वारा। सब उपनिषदों का सार है यह गीता। अध्यात्मविद्या की यह एक अनुपम मोती है। जितनी बार उसका पठन–पाठन किया जाये तब–तब जीवन क्षेत्र में हमें नवाभिनव भाव परिलक्षित होते हैं।

श्रीमद्भगवद्गीता के प्रत्येक अध्याय की परिसमाप्ति पर हम लिखा पढ़ते हैं–

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीता सूपनिषत्सु ब्रह्म विद्यायां योगशास्त्रे श्री कृष्णार्जुन संवादे–अमुक योगो नाम अमुकोऽध्यायः।

इसके लिखने का अभिप्राय मात्र यह इंगित करने के उद्देश्य से किया जा रहा है कि उपर्युक्त लेख में क्या वैशिष्ट्य सन्निहित है। इसे समझने के लिए हम श्रीमद्भगवद्गीता के सत्रहवें अध्याय के श्लोक सं. 23 से 27 तक आपका ध्यान आकर्षित करते हुए उन श्लोकों को क्रमशः नीचे सुलभ–सन्दर्भ हेतु प्रस्तुत करना चाहूँगा।

ॐ तत्सदिति निर्देशो ब्रह्मणस्त्रि विधः स्मृतः।
ब्राह्मणास्तेन वेदाश्च यज्ञाश्च विहिताः पुरा।। 23।।
तस्मादोमित्युदाहृत्य यज्ञदान तपः क्रियाः।
प्रवर्तन्ते विधानोक्ताः, सततं ब्रह्मवादिनाम्।। 24।।
तदित्यनभिसंधाय फलं यज्ञ तपः क्रियाः।
दान क्रियाश्च विविधाः, क्रियन्ते मोक्षकांक्षिभिः।। 25।।
सद्भावे साधुभावे च सदित्येतत्प्रयुज्यते।
प्रशस्ते कर्मणि तथा सच्छब्दः पार्थ युज्यते।। 26।।
यज्ञे तपसि दाने च स्थितिः सदिति चोच्यते।
कर्म चैव तदर्थीयं सदित्येवाभिधीयते।। 27।।

ज्ञातव्य है कि गीतोपवर्णित विद्या ब्रह्मविद्या है। ॐ, तत्, सत्, ये तीन ब्रह्म की ही तीन व्याहृतियां हैं। इनसे ही ब्राह्मण (ब्रह्मपरायण) वेद और यज्ञ सृष्टि के आरम्भ में उत्पन्न किये गये थे।

अतः यज्ञकर्म, दान तथा यज्ञ क्रियायें, जो शास्त्रविधानोक्त हैं। वे सर्वदा शब्द ''ओम्'' के उच्चारण के द्वारा ही वेदज्ञ ब्राह्मणों से प्रारम्भ की जाती हैं।

यतः सर्वस्व उस परमशक्ति द्वारा ही संचालित है, अतः मोक्ष की आकांक्षा करने वाले (मुमुक्षु पुरुषों) से फल की कामना किये बिना, यज्ञ, तप तथा विविध दानादि कर्म किये जाते हैं।

सद्भाव और साधुभाव में 'सत्' इस शब्द का प्रयोग विहित है। इसके अतिरिक्त किसी प्रशस्त कर्म में भी इस शब्द के प्रयोग का विधान है।

यज्ञ, तप तथा दान में तत्परता की स्थिति में भी 'सत्' शब्द व्यवहार्य है। वास्तव में उस परम सत्य व सत्ता के प्रति कृत कोई भी कार्य 'सत्' शब्द द्वारा प्रयोजनीय होता है।

उपरिलिखित विवेचन से स्पष्ट हुआ कि 'ओम–तत्–सत्' इन तीनों पदों को ब्रह्म–सम्बन्धि–कार्यों में ही तत्तदर्थ में प्रयोग करना शास्त्रोक्त विधान है। इसे ब्रह्मविद्या के साथ–साथ योगशास्त्र का प्रतिपादक ग्रन्थ होने का भी गौरव प्राप्त है। उपनिषदों में सर्वोत्तम श्रेणी में तो श्रीमद्भागवद्गीता है ही। हो भी क्यों न, प्रसिद्ध सूक्त इस विषय में यह भी है।

गीता सुगीता कर्तव्या, किमन्यैः, शास्त्रविस्तरैः।
या स्वयं पद्मनाभस्य मुखपद्माद्विनिस्सृता।।

अर्थात् गीता का ही भली प्रकार अध्ययन व अनुशीलन किया जाना श्रेयस्कर है। अन्य अनेक शास्त्रों के विस्तृत अध्ययन से क्या प्रयोजन सिद्ध होगा। यह गीता तो भगवान् विष्णु (कृष्णरूप में) के मुखारविन्द से ही प्रकट हुई। इसका ही निरन्तर पठन, मनन तथा अनुशीलन सर्वथा हितकर है।

ज्ञान योग भक्तियोग तथा कर्मयोग श्रीमद्‌भगवद्‌गीता के तीन प्रतिपाद्य विषय है। इन तीनों मार्गों से अभीष्ट गन्तव्य की ओर मनुष्य मात्र अग्रसर होकर जीवन को सार्थक बना सकता है। अपने-अपने क्षेत्र में इन तीनों का ऐसा सम्बन्ध है कि ये परस्पर अनुस्यूत ऐसे हैं कि किसी को भी छोड़कर नहीं रहा जा सकता। जैसे यदि मात्र ज्ञान का ही अवलम्ब ले कोई व्यक्ति भगवत्प्रीति, अनुराग अथवा भक्तिप्रेम से रहित हो वह भी साधक न बन बाधक ही होगा। अत्यन्त प्रगाढ़ भक्ति हो तथा ज्ञान का भी संयोग बन जाय तब तो वह मणि-कांचन हो जाया करता है। इसी प्रकार निष्काम कर्म करते (कर्म-फल की आशा न रखते हुए) ज्ञानवत्ता तथा भक्तिमत्ता मनुष्य को महात्मा पद पर विराजमान करा देने की सामर्थ्य संजोये है। भिन्न-भिन्न अध्यायों में किसी एक प्रतिपाद्य विषय-प्रसङ्ग में भगवान् ने अपने मुखारविन्द में उस तत्व को प्रधानता अवश्य दी है परन्तु इससे एक स्थान से ही उद्‌धृत कर एक श्लोक के भाव को उस कथ्य के प्रसङ्ग में उसी भाव को सर्वत्र प्रतिपादित करना भी समीचीन नहीं हुआ करता। उदाहरण के लिए भगवद्‌गीता में सप्तम अध्याय में एक श्लोक के द्वारा उन सुकृती व्यक्तियों (पुण्यात्माओं) का उल्लेख किया है जो येन केन प्रकारेण भगवत् शरण की ओर उन्मुख हो जाया करते है। वह श्लोक इस प्रकार है-

चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन।
आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी, ज्ञानी च भरतर्षभ।।
उदाराः सर्व एवैते, ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम्।
आस्थितः स हि युक्तात्मा, मामेवानुत्तमां गतिम्।।

अर्थात्- चार प्रकार के पुण्यात्मा व्यक्ति मेरी शरण ग्रहण किया करते हैं। एक वे जो किसी दुःख से आक्रान्त होते हैं, दूसरे वे जो ज्ञान प्राप्ति हेतु प्रयत्नशील हो जाते हैं, तीसरी कोटि में वे जो सांसारिक सुखों की कामना की पूर्ति में होते हैं और चौथे वे जो ज्ञानवान् होते हैं। भगवान् ने इन सब प्रकार के व्यक्तियों को उदार भाव वाला कहा है परंतु ज्ञानवान् व्यक्ति को परिभाषित करते हुए उसे श्रेष्ठ बताया है क्योंकि वह मन और बुद्धि दोनों से भगवत् शरणापन्न होता है और स्थिरता से भगवत् चिन्तन मनन के द्वारा निरन्तर प्रयत्नरत रहता है।

इससे मात्र यह अर्थ निकाल लेना कि ज्ञानी पुरुष श्रेष्ठ है- यह बात प्रतिशत सही है- परंतु 'ज्ञान' शब्द के अन्तर्हित जब तक समस्त गुणों को आत्मसात् न किया जाय और इधर-उधर के उधारे ज्ञान को ही बटोर हम "ज्ञानी" हो जायें या कहाये जायें, यही समझ में

हम भूल कर जाते है और अर्थ का ही अनर्थ कर दिया करते है।

इसी प्रकार अध्याय 15 के अन्तर्गत निम्नलिखित श्लोक को भी निदर्शन के रूप में उद्धृत किया जा रहा है–

सर्वस्य चाहं हृदि संनिविष्टो, मत्तः स्मृतिर्ज्ञानमपोहनं च।
वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यो, वेदान्तकृद् वेदविदेव चाहम्।।

अर्थात्–भगवान् निज मुखारविन्द से कह रहे है कि मैं सबके हृदयान्तर मे प्रवेश करता हूँ। मुझसे ही स्मृति, ज्ञान और उसका अपवारण हुआ करता है। समस्त वेदो मे मैं ही एक वेद्य (जानने योग्य तत्त्व) हूँ। मैं ही वेदान्त का प्रतिपादक कारण तथा मैं ही वेदो का ज्ञाता हूँ।

यहाँ अध्याय विशेष मे पूर्वा पर प्रसङ्ग मे भगवन्मुखारविन्द की वाणी का तदनुसार ही अनुशीलन कर भावो को हृदयङ्गम करना चाहिए। केवल एक पद से अपने मतलब भर की बात को ग्रहण कर लेना और तदनुसार उसकी व्याख्या करना उचित नही है। गीता के गूढ़ रहस्य को समझना भी सरल कार्य नहीं है। इसके बार–बार अध्ययन व मनन से नित्य नवीन भावों की समुष्टि हुआ करती है। जीवन जिस प्रकार एक गूढ़ गुत्थी है, उसी गूढ़–गुत्थी को सुलझाने के लिए भगवद्गीता एक अनुपम–साधन है।

भगवद्गीता की व्याख्या अनेकानेक विद्वानो द्वारा समय–समय पर हुई है। अनेक भाषाओं मे इसका अनुवाद होना भी इस ग्रन्थ रत्न की ग्राह्यता, उपादेयता तथा अनुपमेयता सिद्ध करता है।

इस छोटे से लेख द्वारा इस महान ग्रन्थ के एक–एक महान् व अन्तर्गूढ़ भावों का एकत्र समुद्घाटन सर्वथा दुष्कर महान् व अन्तर्गूढ़ भावों का एकत्र समुद्घाटन सर्वथा दुष्कर है। यह एक ऐसा ग्रन्थ है जो सार्वभौमव सार्वकालिक है। विश्व के किसी भी पटल या धरातल पर निवास कर रहे किसी भी व्यक्ति विशेष पर किसी भी काल विशेष मे जीवन का यह दिग्दर्शन कराता है। दिव्यदृष्टि सम्पन्न हमारे महर्षियों की यह एक अनुपम देन है।

हमारे आराध्य सद्गुरुदेव स्वमुखारविन्द से नित्यप्रति श्रीमद्भगवद्गीता के छ–छः अध्यायों का स्वयमेव वाचन करते और कराते रहे हैं। तत्पश्चात् उनमें से किसी एक भाव को आधार बनाकर उसकी विशद व्याख्या करते थे। हमारे सद्गुरुदेव यतः महिमा–मण्डित अवतारी महापुरुष के रूप में हमारे समक्ष आये, उनकी तुलना तो कोई क्या करेगा परंतु हम सब इतना तो अवश्य ही कर सकते हैं कि हम उनके पदचिन्हों का अनुसरण कर अपने जीवन को कृतार्थ करें। हमें श्रीमद्भगवद्गीता के एक–एक अध्याय को नित्य–निरन्तर नियमानुवर्ती हो अवश्य पढ़ना चाहिए। यह स्वाध्याय की कोटि मे आता है। स्वाध्याय के साथ–साथ हमें उस पर मनन–चिन्तन भी करते रहना चाहिए। शनै –शनैः हमारे जीवन के गूढ़ातिगूढ़ रहस्य उद्घाटित होकर हमें उद्भावित व उद्भासित ही करेंगे, ऐसा मैं मानता हूँ।

श्रीमद्भगवद्गीता की किसी एक विषय–वस्तु की व्याख्या लेख में की जा सकती है।

भविष्य में, यदि श्री सद्‌गुरुदेव की और कृपा बरसी तो आगामी लेखमाला में इस ग्रन्थरत्न के किसी एक श्लोक को आधार बना मैं, अपनी मन्दमति से, लिखते रहने का प्रयास करूंगा। इति शुभ।

। श्री सद्‌गुरवे नमः।

भूल-सुधार

सड़क सँकरी थी, फिर भी बस तेजी से दौड़ी जा रही थी, क्योंकि ड्राइवर अत्यंत कुशल था। अचानक बस की गति धीमी हो गई। सामने से गन्नों से लदी हुई ट्रालियाँ आ रही थीं। उनको रास्ता देने के लिए ही बस धीमी हो गई थी। यह एक पर्यटक बस थी, जिसमें शिक्षाविभाग के उच्च अधिकारी और अध्यापक सवार थे, जो भारत-भ्रमण पर निकले थे। गन्नों को देखकर कई लोगों के मुँह में पानी आ गया, लेकिन किसी की हिम्मत नहीं हुई कि किसी ट्रॉली में से एक गन्ना खींच ले, क्योंकि विभाग के सबसे बड़े अधिकारी भी बस में उपस्थित थे। बस की गति और भी धीमी हो गई थी और बस सड़क के किनारे खड़ी गन्नों से लदी एक ट्रॉली को पार कर रही थी। इतने में शिक्षाधिकारी महोदय ने बाहर हाथ निकाला और झटपट एक गन्ना खींच लिया। बस, फिर क्या था! सारी वर्जनाएँ टूट गयीं। केवल बस की बायीं ओर बैठे यात्रियों ने ही नहीं, अपितु विपरीत दिशा में बैठे यात्रियों ने भी दूसरी तरफ आ-आकर गन्ने खींचने शुरू कर दिये। इतने में एक युवक ने खड़े होकर कहा-अरे! आप सब लोग ये क्या कर रहे हैं? एक किसान जो इतनी मेहनत से फसल उगाता है, उसे यूँ ही मुफ्त में झपट रहे हैं। इतना कहकर नवयुवक ने शिक्षाधिकारी की ओर मुँह किया और कहा-सर, आप भी! सहयात्री उस नवयुवक को आग्नेय नेत्रों से घूरने लगे और एक व्यक्ति ने कहा-निरक्षर! अपनी औकात में रहो। शिक्षाधिकारी से इस तरह बात करने की जुर्रत कैसे की तुमने?

अब शिक्षाधिकारी की बारी थी। वे खड़े हो गये और बोले-ठीक ही तो कह रहा है, यह नवयुवक। हमें क्या अधिकार है किसी की चीज यूँ उठाने का! और चोरी के बाद सीनाजोरी! नहीं, हम सबने गलत किया है। पहले मैंने गलती की और तुम सबने उसे दोहराया। मुझे फख्र है कि पूरी बस में एक व्यक्ति तो है, जिसमें नैतिक दृढ़ता और निडरता है तथा जिसने अपने उच्च अधिकारी को भी गलत कार्य करने का अहसास दिलाया है। मैं अपनी गलती स्वीकार करता हूँ और अपने नवयुवक मित्र की नैतिकता और साहस की प्रशंसा करता हूँ।

वास्तव में गलती तो किसी से भी हो सकती है, लेकिन महान् व्यक्ति वही है, जो अपनी गलती का अहसास होते ही फौरन उसे स्वीकार कर ले। गलतियों को स्वीकार किये बिना उनका सुधार होना मुश्किल है और जो अपनी गलतियों को स्वीकार कर सुधार लेते हैं, वे ही सही अर्थों में महान् हो पाते हैं।

याद रखो

● जिसके पास जो कुछ होता है, वह न चाहने पर जगत् को सहज ही वही देता है, गुलाब सुगन्ध का और मल दुर्गन्ध का स्वभाव से ही वितरण करेगा और जिन वस्तुओं का जितनी दूर तक अधिक विस्तार होगा, उन्हीं का अन्य लोगों में भी-उतनी ही दूर तक प्रभाव होगा, लोग वैसे ही बनने लगेंगे। अतएव जिनके हृदय में सद्भावों का भण्डार है तथा शुभ संस्कारों का निवेश है, उनके द्वारा सदा सत्कर्म होते हैं, उन्हीं का अन्य लोगों में भी प्रचार, प्रसार तथा विस्तार होता है- उनसे फिर दूसरों में। इस प्रकार अपना तथा जगत् के लोगों का सहज ही कल्याण होता है। इसी प्रकार इसके विपरीत दुर्भावों तथा दुष्क्रियाओं से अपना तथा जगत् के अन्य लोगों का निश्चित अहित होता है।

● जो पुरुष दूसरों के हित-सुख का सम्पादन अपना कर्तव्य समझेगा; स्वाभाविक ही उसके अन्तःकरण में त्याग, दया, सहानुभूति, सेवा, संयम तथा शुद्ध सदाचार के भावों का उदय तथा संवर्धन होता रहेगा और जितना-जितना वह इन शुद्ध संस्कारित भावों के अनुसार क्रिया करने में तत्पर होगा, उतना-उतना ही उसके इन पवित्र भावों में अधिकाधिक उत्कर्ष, शुद्धि, शक्ति तथा उल्लासमयी धारा का प्रवाह तीव्र रूप से बहने लगेगा।

● ● ●

मीडिया पोस्ट

हृदय स्पर्शी सेवा

उत्पाद (ब्रांड) को बाजार में स्थापित करने के लिए एक अनोखी एवं प्रभावशाली योजना -

विभिन्न माध्यमों से विज्ञापन की सुविधा

1. डाक वस्तुओं पर विशेष आवरण (स्टाम्प फ्रेम) का विज्ञापन
2. मीटर मशीनों पर स्थान का प्रायोजन (स्पॉन्सरशिप)
3. पेन पोर्टों पर स्थान का प्रायोजन (स्पॉन्सरशिप) दर : रु. 1000 प्रति पैनल प्रतिमाह पेंटिंग चार्ज रु. 500.00 प्रति पैनल
4. डाकघर परिसर में होर्डिंग लगाकर विज्ञापन दर रु. 5.50 प्रति वर्ग फीट प्रति माह
5. डाकघर के अन्दर या बाहर ... कोई अथवा बोर्ड लगाकर विज्ञापन दर रु. 100/- प्रति वर्ग फुट प्रति माह
6. डाकघर के पर्चों पर ... लगाकर विज्ञापन दर रु. 100/- प्रति ... 400/-
7. मेघदूत पोस्ट कार्ड के माध्यम से विज्ञापन अर्थात् पोस्ट कार्ड के आधे भाग पर उत्पाद का विज्ञापन : दर रु. 2/- प्रति पोस्ट कार्ड। मेघदूत पोस्ट कार्ड का विक्रय मूल्य केवल 25 पैसे मात्र।

SIDDHYOG Postal Regd. No.: Ag. 19/2009-11
JUNE 2009

संस्थापक :- योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज। मुद्रक एवं प्रकाशक डॉ. रामलाल शर्मा के लिए राष्ट्रीय ब्लॉक एवं प्रिंटिंग वर्क्स, आगरा-3 से मुद्रित एवं श्री योग प्रशिक्षण केन्द्र, सदोई (एत्मादपुर) आगरा से प्रकाशित। आर.एन.आई. नं. UPHIN/2004/14566. सम्पादक : आचार्य म. (डॉ.) रामलाल शर्मा